हिन्दीविलास

HINDI VILASA

(Selections from Hindi Verse)

COMPILED BY

SURYA KANTA, M. A.
PROF. D. A. V. COLLEGE, LAHORE.

PUBLISHED BY

THE UNIVERSITY OF THE PANJAB

FOR

THE HINDI PROFICIENCY EXAMINATION

LAHORE.

1933.

Price Rs. 2-4-0.

First Edition, 1933.

All copies legitimately sold bear the impression of the University Seal.

Printed by **Mr. C. L. Kapoor,** at the **Nav Jiwan Press.**
Maclagan Road, LAHORE.

PREFACE.

The Ratna examination has become, to all intents and purposes, an examination for Hindu girls of tender age. The Board felt the necessity of a poetical selection that would supply the juvenile readers with what is best in Hindi literature, avoiding at the same time the sensuous element.

The present work is designed to meet this demand. It includes in it only those pieces which possess stirling worth, and are not beyond the ability of the young readers.

The introduction is a brief summary of the Hindi literature. It touches the main currents of each period and brings out the characteristics of the leading poets. Notes are fairly exhaustive.

I should take this opportunity of tendering my thanks to the members of the Board who entrusted me with this work, and to the poets, past as well as present, from whom I have indulgently drawn.

D. A. V. COLLEGE
LAHORE
Dated 5/7/1933.

SURYA KANTA

भूमिका

१

१—उत्तर भारत के विशाल भूखण्ड में गत हजार वर्षों से प्रचलित हिन्दी भाषा का साहित्य, इस देश के धार्मिक तथा नैतिक उत्थान और पतन को जानने का श्रेष्ठ साधन है। भारत की सभ्यता तथा संस्कृतिपरम्परा की रक्षा करने के कारण हिन्दी साहित्य का गौरव वर्णनातीत है।

२—जीवन के रागात्मक व्याख्यान को साहित्य कहते हैं। देश और काल में होने वाले परिवर्तनों के साथ साथ जाति के साहित्य में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इस दृष्टि से हम हिन्दी साहित्य को चार युगों में बांट सकते हैं—

(१) वीरगाथा काल संं० १०५० से १४०० तक।

(२) भक्ति काल संं० १४०० से १७०० तक।

(३) रीति काल संं० १७०० से १८५० तक।
(४) गद्य काल संं० १८५० से अब तक।

२

वीरगाथा काल

३—यह युग राजनीतिक उत्थान और पतन का युग था। भारत के बहुतर भाग पर विदेशियों का आधिपत्य स्थापित हो चुका था। लाहौर, देहली, मुलतान तथा अजमेर आदि में मुसलमानों की विजय वैजयन्ती फहराने लगी थी। राजपूतों को घरेलू कलह से अवकाश न मिलता था। वे स्वयंवरों में एक दूसरे के विरुद्ध लोहा लेना जानते थे, किन्तु विदेशियों के साथ नहीं। वे अत्यन्त शूर, पराक्रमी, तथा आन पर मर मिटने वाले थे, किन्तु उनके यह गुण उनके अन्धविश्वास, राजनीतिक अदूरदर्शिता तथा पारस्परिक कलह के कारण नहीं के बराबर थे।

४—जिस समय उत्तर भारत में ऐसी अशान्ति तथा अन्धकार का आटोप छाया हुआ था, उसी समय वहां अपभ्रंश भाषाओं से उत्पन्न होकर हिन्दी साहित्य अपने शैशव में खेल रहा था। भीषण हलचल तथा विकट अशान्ति के युग में साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास असम्भव होता है। ऐसे काल में देश में वीरोल्लासिनी कविताओं ही की गूँज हुआ करती है। हिन्दी के आदि युग में भी वीर रस की कविताएँ ही मिलती हैं।

—वीरगाथा काल में इस बात का होना स्वाभाविक था कि कवि

समाज के संघटन तथा सुव्यवस्था की ओर अधिक ध्यान न दे अपने आश्रयदाता राजाओं का गुणगान करें, और हुआ भी यही। हिन्दी में जयचन्द जैसे नृपतियों की काल्पनिक वीर गाथाएँ रचने वाले कवि तो हुए, किन्तु सच्चे वीरों की पवित्र गाथाएँ उस काल में नहीं लिखी गईं, और यदि लिखी भी गईं तो अब उनका पता नहीं।

६—इस काल की सर्वोत्कृष्ट कृति पृथ्वीराज रासो है। इसमें छन्दों का विस्तार, और भाषा का सौष्ठव पर्याप्त मात्रा में मिलता है इसमें कथा कथानकों की भरमार है। रामचरित मानस तथा पद्मावत की भांति इसमें भावों की मार्मिकता तथा अभिनव कल्पनाओं की प्रचुरता नहीं मिलती, तथापि इसमें वीर रस का परिपाक है और कहीं कहीं कोमल भावना तथा उक्तियों का चमत्कार है। रासो की ऐतिहासिक घटनाएँ बहुधा असत्य हैं। इसकी भाषा व्याकरण दृष्ट्या असङ्गत है। वीरगाथा काल की कृतियों में आल्हाखण्ड, बीसलदेव रासो, खुसरो तथा भूषण की कृतियां भी ध्यान देने योग्य हैं।❀

३

भक्तिकाल—ज्ञानाश्रयी शाखा

१—वीर शिरोमणि हम्मीरदेव के पतन के बाद हिन्दी साहित्य में वीर गाथाओं की इति हो गई। मुसलमानों के उद्धत व्यवहार से सन्तप्त हो भारतीय जनता जीवन से पराङ्मुख हो गई और

❀ इस काल की कविता कठिन होने के कारण नहीं दी गई।

उसे मृत्यु या धर्म परिवर्तन के अतिरिक्त और कोई चारा न दीख पड़ा था। सन्त कवियों ने अपनी निर्गुण भक्ति के द्वारा भारतीय जनता के हृदय में जीवन की आशा उत्पन्न की और उसे विपत्ति की अथाह जलराशि के ऊपर तैरते रहने के लिये उत्साहित किया। उस समय हिन्दुओं को सगुणोपासना की निःसारता का आभास मिल चुका था। मुसलमान निर्गुणोपासक थे। कबीर आदि सन्तों ने भारतीय अद्वैतवाद और मुसलमानी एकेश्वरवाद के भेद की ओर ध्यान न दे हिन्दू जनता को मुसलमानों से मिलते जुलते पथ पर लगा हिन्दू मुसलिम ऐक्य की स्थापना की। यद्यपि इस विषय में उन्हें पूर्ण सफलता न हुई तथापि उनके निर्गुणवाद ने तुलसी और सूरदास के सगुण मार्ग के लिए मार्ग प्रस्तुत कर दिया और उत्तरीय भारत के भावी धार्मिक जीवन के लिए उसे बहुत कुछ संस्कृत तथा परिष्कृत बना दिया।

८—रामानन्द के शिष्य कबीर, सेना, पन्ना, भवानन्द, पीपा और रैदास आदि के द्वारा नवोत्थित भक्ति तरङ्ग ने हिन्दू समाज के जाति भेद को बहुत कुछ निर्बल बना समान भाव से सब के लिये परमेश्वर पूजा का मार्ग खोल दिया।

९—साहित्यिक दृष्टि से भी सन्त कवियों का स्थान ऊंचा है। इसमें सन्देह नहीं कि केशव और बिहारी के समान इनकी भाषा प्राञ्जल नहीं, सूर तथा तुलसी के समान इनकी कविता सरस तथा व्यापकनहीं और जायसी जैसे कवियों की इनमें प्रकृति तथा आत्मा की रागात्मक एकता नहीं, तथापि इनके सन्देशों में

अन्तर्वेदना है, इनके उपदेशों में आत्माभिव्यक्ति है, इनके उद्गारों में रहस्यवाद है, इनकी उक्तियों में प्रभावोत्पादकता है और इनकी कृतियों में देश के सामान्य जीवन की सरलता और शुचिता का प्रतिबिम्बन है।

१०—इस शाखा के नेताओं में कबीर, गुरु नानक, दादू, मलूकदास तथा सुन्दर दास के नाम उल्लेख योग्य हैं।

४

*भक्तिकाल —प्रेममार्गी शाखा**

११—आविर्भाव। मुसलमान और हिन्दुओं का संघर्ष होने पर दोनों की रीति नीति में भेद पड़ा, किन्तु स्वाभाविक धर्म प्रेम के कारण दोनों जातियों ने अपनी सभ्यता तथा संस्कृति को यथा पूर्व बनाये रक्खा। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह भाषा तथा भावों का आदान प्रदान करता रहता है। खुसरो ने हिन्दू और मुसलमानों में भाषा का ऐक्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। कबीर ने दोनों जातियों में भावों की एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया। उसने इस्लाम तथा हिन्दू धर्म के आधार भूत आत्मतत्त्व की एकता का उपदेश दिया। इसके विपरीत जायसी आदि प्रेममार्गी कवियों ने प्रेम गाथाओं द्वारा हिन्दू और मुसलमानों के लौकिक जीवन की एकता का आभास दिलाया। जहां कबीर आदि ने परोक्ष सत्ता की एकता पर अधिक ध्यान दिया था, वहां जायसी आदि ने व्यावहारिक

---

* जायसी की कविता कठिन होने के कारण छोड़ दी गई है।

(प्रत्यक्ष, लौकिक) सत्ता की एकता पर अधिक बल दिया ।

सूफियों का सिद्धान्त—

१२—(अ) भारत का वेदान्त बौद्ध भिक्षुओं के साथ विदेशों में पहुंच गया था । इस्लाम में ईश्वर एक है । वह जगत् का स्रष्टा और प्राणिमात्र का नियन्ता है । जीव, जो वस्तुतः परमात्मा का औपाधिक अंश है, भेदवाद के उक्त सिद्धान्त से कभी तृप्त नहीं हुआ । फलतः मुहम्मद साहब की मृत्यु के उपरान्त दूसरी या तीसरी सदी में (भारतीय वेदान्त के प्रभाव से) जीव और ब्रह्म की एकता को मानने वाले सूफी संप्रदाय का (मिस्र में) उत्थान हुआ । फरीदुदीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, तथा सादी आदि ने अपनी भारत यात्राओं में यहां से बहुत कुछ सीखा और सूफी धर्म को परिष्कृत किया ।

१३—(आ) रहस्यवाद । जीव तथा परमात्मा के ऐक्यात्मक सम्मिलन में लोकोत्तर आनन्द होता है । प्रेमातिरेक के कारण प्रणयी की इन्द्रियां स्तब्ध हो जाती हैं और उसे आत्मानुभूति का प्रकाशन करने के लिये समुचित शब्द नहीं मिलते । किन्तु वह लोक संग्रह की दृष्टि से अपने अनुभव का व्याख्यान करता है । उसके इन प्रेमरंजित स्खलित शब्दों में प्रेमात्मक चरम सत्य अथवा रहस्य का प्रतिफलन होता है ।

१४—(इ) प्रत्यक्ष से परोक्ष का व्याख्यान । प्रेमी कवि निर्गुण तथा निराकार आत्मतत्त्व के व्याख्यान के लिये लौकिक प्रेम कथाओं की सहायता लेते हैं । जायसी ने पदमावत में रतनसेन

और पद्मावती के प्रेम रूपक द्वारा जीव और परमात्मा के लोकोत्तर प्रेम की अभिव्यंजना की है। उसने व्यक्त जगत् को अव्यक्त चिति का प्रतिबिम्ब अथवा विकास समझ कर पहले व्यक्त के अगणित नाम रूप भेदों का ऐक्य में समन्वय किया है और पीछे से प्रतिबिम्ब मात्र का बिम्ब के साथ तादात्म्य स्थापित किया है। संसार में एक मात्र प्रेम ही ऐसी वृत्ति है जो भिन्न भिन्न व्यक्तियों में एकता उत्पन्न कर सकती है। जायसी आदि ने इसी प्रेम के द्वारा भेदों का अभेद में समन्वय किया है।

१५—(ई) वस्तुवर्णन। प्रेममार्गी कवियों का प्रधान लक्ष्य वस्तु अथवा घटनाओं का वर्णन करना नहीं, प्रत्युत उन वस्तुओं तथा घटनाओं के पीछे विराजने वाले तादात्म्य रूप चरम सत्य का अभिव्यंजन करना है। फलतः वे वस्तु वर्णन में देव की और घटना वर्णन में भूषण की समता नहीं कर पाये।

१६—(उ) भावसंकेतन। कविता का एक ध्येय रति, शोक, उत्साह आदि अभिलषित भावों का समुत्थापन करना है। जायसी ने पद्मावत में रति तथा शोक आदि का भावपूर्ण व्याख्यान किया है। सूफी कवियों की दृष्टि लोकोत्तर अनुराग में रंगी होने के कारण अत्यन्त व्यापक तथा मार्मिक है।

१७—(ऊ) अलंकार। कविता का प्रमुख ध्येय भावचित्रण है न कि भाषा भूषा अथवा अलंकार प्रदर्शन। जायसी आदि ने भाव को प्रधानता देते हुए अलंकारों को वहीं तक अपनाया है,

जहां तक कि वे कविता कामिनी की रुचिरता के पोषक हैं।

१८—भाषा। सूफी कवियों ने अवध की हिन्दी का प्रयोग किया है। वीरगाथा कालिक हिन्दी कविता का क्षेत्र राजपूताने का पश्चिमी प्रान्त तथा दिल्ली के आसपास की भूमि था। फलतः तात्कालिक हिन्दी कविता में वहीं की (शौरसेनी प्राकृत तथा नागर अपभ्रंश से निकली हुई) भाषा का प्रयोग हुआ। वैष्णव आन्दोलन की प्रगति के साथ हिन्दी काव्य का क्षेत्र राजपूताने से हट कर पूर्व की ओर आया। जायसी आदि ने बोल-चाल की अवधी को परिमार्जित कर उसे साहित्यिक बनाया और उसी में अपनी कविता की।

१६—सूफी कवियों में कुतबन, मर्दन, मलिक मुहम्मद जायसी, उसमान, शेख नबी तथा नूर मुहम्मद आदि के नाम स्मरणीय हैं।

५

भक्तिकाल—रामभक्ति शाखा

२०—वैष्णव भक्ति की रामोपासिनी शाखा का आविर्भाव स्वामी रामानन्द ने विक्रम सम्वत् की १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में किया था। कबीर, पीपा, रैदास, सेना, मलूक आदि सभी सन्तों पर रामानन्द का ऋण है। इन्हीं की शिष्य परम्परा में आगे चल कर गोस्वामी तुलसीदास हुए जिनकी जगत् प्रसिद्ध रामायण हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट रत्न तथा उत्तर

भारत के धर्मप्राण जन साधारण का सर्वस्व है। कबीर आदि सन्तों के सम्प्रदाय देश के परिमित भागों में ही अपना प्रभाव दिखा सके थे; इसके विपरीत गोस्वामी तुलसीदास की कविता ऊँच-नीच, राजा-राव, पढ़े-वेपढ़े, सब की दृष्टि में समान रूप से आदरणीय सिद्ध हुई।

२१—गोस्वामी जी की समस्त रचनाओं में उनका रामचरित मानस श्रेष्ठ है और उसका प्रचार उत्तर भारत में घर घर है। रामायण करोड़ों भारतीयों का एक मात्र धर्म ग्रन्थ है। मौलिक तथा व्यापक कवित्व, उदार सामाजिकता, परोपकारिणी नीति आदि सभी की दृष्टि से यह ग्रन्थ भारतीय प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट निःश्वास है। लोक संग्रह, भेदों का अभेद में समन्वय, वर्णाश्रम व्यवस्था इत्यादि सभी बातों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। यह सब होते हुए भी गुसाईं जी ने जो कुछ लिखा है अन्तरात्मा के प्रसाद के लिए लिखा है; उपदेशेच्छा अथवा कवित्व प्रदर्शन की अभिलाषा से नहीं। कविता की जो सरलता, ऐन्द्रियता, तथा भावमयता तुलसी में मिलती है वह अन्यत्र कदाचित् ही मिले। नाटकीय कला की जो उत्कृष्ट छटा उद्धृत सम्वादों में मिलती है वह दूसरे साहित्य में सम्भवतः कहीं मिले। फलतः जहां वे काव्य चमत्कार का भद्दा प्रदर्शन करने वाले केशव आदि से सहज ही ऊपर आजाते हैं, वहां उपदेशों का सहारा लेने वाले कबीर आदि कवियों से भी वे अनायास बाजी ले जाते हैं। कवित्व की दृष्टि से

जायसी आदि का क्षेत्र तुलसी की अपेक्षा संकुचित है; और सूरदास के उद्‌गार सरल तथा ऐन्द्रिय होते हुए भी तुलसी के समान आत्म संघर्षण की अभिव्यक्ति नहीं करते। इस प्रकार केवल कवित्व ही की दृष्टि से तुलसीदास साहित्याकाश के सूर्य ठहरते हैं।

२२—तुलसी के उपरान्त रामभक्ति शाखा में कितने ही कवि हुए, जिनमें 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास तथा प्राणचन्द, हृदयराम, विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं।

६

भक्तिकाल—कृष्णभक्ति शाखा

२३—मौलिक महाभारत में कृष्ण को अवतार का रूप नहीं दिया गया था। गीता में कृष्ण ने ज्ञान तथा विज्ञान की दृष्टि से अपने को ब्रह्म बताया था। भागवत पुराण में कृष्ण को पूर्णावतार मान लिया गया। काल क्रम से कृष्णभक्ति संप्रदायों में बंट गई। हिन्दी के कृष्णोपासक कवि भिन्न भिन्न संप्रदायों को मानते थे। विद्यापति और मीरा निम्बार्क के उस मत को मानते थे जिसमें राधा को कृष्ण की प्रेयसी माना गया है। दूसरी ओर सूरदास श्री वल्लभ के अनुयायी थे जिनका भक्ति-मार्ग पुष्टि मार्ग के नाम से विख्यात है।

२४—वल्लभ के शिष्यों में सर्वप्रधान, हिन्दी के अमर कवि, महात्मा

सूरदास हुए, जिनकी सरस वाणी से देश के असंख्य सूखे हृदय हरे हो उठे और निराश जनता में नवीन उल्लास की तरंगें बह निकलीं। भक्ति के लोकोत्तर आवेश में आ वीणा के साथ जो भी पद इस प्रज्ञाचक्षु कवि ने गाये वे सोने के अक्षर बन गये और सहृदय जनता के हृदयों में सदा के लिये स्थान पा गये। शृङ्गार और वात्सल्य का जैसा सरल तथा ऐन्द्रिय स्रोत सूर की कविता में बहा है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं। जीवन की सूक्ष्मातिसूक्ष्म वृत्तियों तक सूर की पहुंच है। उन्होंने कविता के प्रदीप से, विरहार्त हृदय की अन्तस्तली को जगमगा दिया है, उसको कवितामृत से सींच कर सदा के लिये अमर बना दिया है। यह ठीक है कि सूर ने जीवन के संघर्षमय पहलू पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु मनुष्य जीवन में कोमलता, सरलता और सरसता भी उतनी ही प्रयोजनीय हैं जितनी गंभीरता। कविता के पहले दो लक्षण अर्थात् सरलता तथा ऐन्द्रियता में सूरदास तुलसी से भी बाजी ले गये हैं किन्तु तीसरे लक्षण अर्थात् गंभीरता का उन में अभाव होने के कारण वे व्यापक कवित्व की दृष्टि से तुलसी से नीचे रह गये हैं। महाकवि सूरदास के अतिरिक्त राधाकृष्ण के प्रेम में मग्न कृष्णराम, परमानंद, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी आदि अष्ट छाप के कवि, वल्लभ स्वामी और उनके पुत्र विट्ठलनाथ की शिष्य परंपरा में हुए। इनके अतिरिक्त हितहरि वंश और स्वामी हरिदास, रहीम, गङ्ग, नरहरि, बीरबल, टोडरमल आदि ने भी कृष्ण प्रेम में स्तुत्य कविता की।

७

रीतिकाल

२५—कबीर आदि सन्तों ने हिन्दू और मुसलमानों की भेद बुद्धि को दूर करके, सरल, सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया था। जायसी आदि लौकिक प्रेम को स्वर्गीय बनाने के प्रयासी हुए थे। सूर आदि ने मधुर भावों से भावित कृष्ण काव्य की रचना कर असंख्य हृदयों को हरा बनाया था और तुलसी ने भारत की संस्कृति को बड़े ही व्यापक, मधुर और उदार भाव से अंकित कर हिन्दू जाति का प्रतिनिधित्व प्राप्त किया था। इन भक्तों की कृति में कविता का अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग दोनों समान रूप से विकसित थे। इन कवियों ने भाषा को भाव की चेरी बना कर उसका उपयोग किया है। अलङ्कारों से सहायक का काम लिया है स्वामी का नहीं।

२६—भक्ति के विषय में जो कुछ कहा जा सकता था सूर और तुलसी कह चुके थे। कविता के अन्तरङ्ग का जितना भी अलङ्करण हो सकता था ये कर चुके थे। पीछे के साहित्यकारों तथा कवियों ने कविता के बहिरङ्ग का विश्लेषण तथा अलङ्करण किया और नाना प्रकार के नियम बना उसके स्वारसिक विकास को परिसीमित कर दिया। इन कवियों ने काव्यकला की पुष्टि को अपना ध्येय बना मुक्तक छन्द द्वारा एक एक अलङ्कार, एक एक नायिका और एक एक ऋतु का विशद विवेचन किया है।

२७—सूर ने पवित्र चित्त से कृष्ण और राधा के प्रेम का चित्र खींचा था। जायसी ने विशुद्ध भाव से प्रेम गाथा रची थी। तुलसी ने समन्वयात्मक दृष्टि से राम और सीता के संयोगात्मक तथा बियोगात्मक शृङ्गार का वर्णन किया था। किन्तु रतिरङ्ग में लरसाना और अपने आप को पवित्र बनाये रखना देवताओं का काम है। निदान साधारण समाज, राधाकृष्ण-प्रेम के अभिव्यञ्जित रहस्य को भूल उसकी विलासबीचियों में बह निकला। कवि लोग सत्ताधीशों की कुत्सित वासनाओं को गुदगुदाने के लिये कृष्ण तथा गोपियों की ओट में ऐन्द्रिय प्रेम का नग्न परन्तु अलंकृत अभिनय करने लगे।

२८—शृङ्गार तथा सौकुमार्य का व्यापक साहचर्य है। शृङ्गारी कवियों ने अपनी कृतियों में कर्कशता का बहिष्कार कर कोमल कान्त पदावली का आंचल पकड़ा। सौकुमार्य की दृष्टि से व्रजभाषा श्रेष्ठ है। फलतः रीतिमार्गी कवियों ने अपनी रचनाओं में मुख्यतया व्रजभाषा का प्रयोग किया। कबीर की भाषा कर्कश तथा अव्युत्पन्न थी। जायसी की भाषा ग्रामीण अवधी थी। सूर के "सागर" में व्रजभाषा की वीचियां थीं। तुलसी का अवधी तथा व्रजभाषा पर पूर्णाधिपत्य था। रीतिमार्गी कवियों ने व्रजभाषा में कविता की किन्तु इनकी भाषा में अवधी की पुट मिली रहती थी। इन्होंने कहीं कहीं फारसी का भी सहारा लिया है।

२६—उद्भट कविता के लिये दोहा श्रेष्ठ छन्द है। बिहारी ने दोहे को विकास की चरम सीमा पर पहुंचा दिया।

३०—रीतिकालिक कविता का सर्वाङ्गीण विकास देव और बिहारी की कविता में दीख पड़ता है। बिहारी शृङ्गार रस का सर्वोत्कृष्ट कवि है। प्रियतम के. पलकों की ओट में हो जाने पर, जो चोट मन को पहुंचती है उसके विदग्ध तथा आलंकारिक वर्णन में वह अपने जैसा आप है। स्मृति की कसक और विस्मृति के निरालेपन के वर्णन में वह अद्वितीय है। यौवन के इन्द्र धनुष का जैसा मनोहारी चित्र उसने खींचा है वैसा किसी ने नहीं। कामना और विलास की लरसाती तरंगों पर जैसा वह नाचा है वैसा कोई नहीं। तारुण्य के उन्मेष में गौर बाला के रक्तिम लज्जाभास को जैसा उसने परखा है वैसा किसी ने नहीं। हृच्छयपीडित युवतियों की चितवनों को जितना उसने ताड़ा है उतना किसी ने नहीं। उसने जन्म और कर्म से क्लान्त हुए पुंस्त्व को स्त्रीत्व का रसायन देकर चिरजीवी बनाया है। उसने प्रेम की ओस से एक एक बूंद लेकर सतसई की गगरी भरी है। सतसई की एक एक बूंद में शृङ्गार का मन्त्र है, अनङ्ग का राग है और विलास की सुरभि है। ओस की बूंद का कोई नाम नहीं; धाम नहीं; बिहारी की प्रत्येक बूंद पर स्त्रैणता का नाम है और अभिसार का सौरभ है। इन बातों में बिहारी भारतीय संसार के नेता हैं। कलाकार प्रेमी कवि की दृष्टि से बिहारी देव को नीचा दिखाते हैं, किन्तु अनुभव तथा आध्या-

त्मिक सूक्ष्म दर्शिता में वे उससे पिछड़े हुए हैं।

३१—बिहारी के हृदय में प्रेम था; किन्तु वह प्रेम भौतिक था, ऐन्द्रिय था। उसकी कविता में "प्रेम की पीर" रड़कती है और कभी कभी उसमें दैविकता भी भासने लगती है, किन्तु वास्तव में यह प्रेम, 'सत्यं शिवं सुन्दरं' के उस उच्च आदर्श से, जो आत्मा को पवित्र तथा प्रतिबुद्ध बनाता है, कहीं दूर है। यह तो मनुष्य के हृदय का, जो प्रेम का एक मात्र आगार है, और जहां यथार्थ प्रेम देदीप्यमान रत्न की भांति जगमगाता रहता है, प्रतिबिम्बमात्र है, विकारमात्र है।

३२—रूपमात्र का आगार परम तत्त्व वासनाओं से अतीत है। उसे अलंकारों के भार की मांग नहीं, उस पर रमणियों की कुंचित चितवन का प्रभाव नहीं। वही आत्मिक आलोक सौन्दर्य का सार है और औचित्य का आदर्श है। मनुष्य को उसकी ओर ले जाने वाली कविता ही यथार्थ कविता है। छवि के उस धाम में ही मनुष्य की चेष्टाओं की इति श्री है, वहीं उसके अविरत क्रन्दन का पर्यवसान है। बिहारी आदि कला-कार कवियों को उस धाम के दर्शन न हुए थे। उनकी कविता में सर्वांगीण जीवन की रागिणी नहीं सुन पड़ती। उनकी कृतियों में भौतिक जीवन का आत्मिक जीवन के साथ तादात्म्य नहीं दीख पड़ता। इस युग की कविता में यही बड़ी न्यूनता थी।

३३—रीतिमार्गी कवियों में केशवदास, भिखारीदास, भूषण,

लाल, घनाचन्द तथा पद्माकर आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं।

८

आधुनिक काल—पद्य प्रवाह

३४—हिन्दी की शृङ्गारिक कविता के प्रतिकूल आन्दोलन का श्री गणेश उस दिन हुआ जिस दिन भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र ने अपने 'भारत दुर्दशा' नामक नाटक के प्रारंभ में भारतीयों को संबोधित करके उन्हें देश की जीर्ण अवस्था पर आंसू टपकाने के लिये आमंत्रित किया। "उस दिन शताब्दियों से सोते हुए साहित्य ने जागने का उपक्रम किया था, उस दिन रूढ़ियों की अनिष्टकर परंपरा के विरुद्ध प्रबल क्रांति की घोषणा हुई थी।" उस दिन छिन्न भिन्न देश को ऐक्य के सूत्र में बांधने की शुभ भावना का उदय हुआ था। "उसी दिन देश और जाति के प्राण, एक सत्कवि ने सच्चे जातीय जीवन की झलक दिखाई थी और उसी दिन सकीर्ण प्रांतीय मनोवृत्तियों का अन्त करने के लिए स्वयं सरस्वती ने राष्ट्र भाषा के प्रतिनिधि कवि के कण्ठ में बैठ कर एक राष्ट्रीय भावना उच्छ्वसित की थी।" भारत माता की करुणोज्वल छवि देश ने और देशीय साहित्य ने उसी दिन देखी थी। देश को ओजस्विता तथा उससे उत्पन्न होने वाली विधेयात्मक कविता के उसी दिन दर्शन हुए थे।

३५—राजा राममोहनराय, स्वामी दयानन्द, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि के उद्योग से, सामाजिक, साम्प्रदायिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक क्षेत्रों में नये जीवन का उल्लास हुआ और जनता में भव्य शिक्षा तथा दीक्षा की ओर अग्रसर होने के भाव उत्पन्न हुए। प्रतिभाशाली बंगीय कवियों ने संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य का आश्रय ले अपनी भाषा में सम्मिश्रणात्मक साहित्य उत्पन्न किया था, जिसका पड़ौस में होने के कारण हिन्दी साहित्य पर भरपूर प्रभाव पड़ा। साहित्याकाश में भव्य प्रकाश की किरणें फैल गईं। नवोदित उषा की भावभंगी को देख कविता की स्थिरता जाती रही और उसमें तारुण्य की तरंगें दौड़ गईं। उसने अभिसारिका निरूपण आदि की पुराण भूषा को त्याग देश सेवा तथा जाति सेवा आदि के भावों से अपना कलेवर सजाया।

३६—अब तक कविता ब्रजभाषा में होती थी और उसमें कवित्त तथा सवैया आदि छन्दों का प्रयोग होता था। हिन्दी गद्यने खड़ी बोली को अपना लिया था किन्तु पद्य में, अपनी कोमलता और सरसता के कारण, ब्रजभाषा ही उपयुक्त हो रही थी। नवीन युग के साथ साहित्य में नवीनता आई। ब्रजभाषा का आसन खड़ी बोली ने ले लिया। छन्दों में अनेकरूपता आने लगी। नवीन छन्दों का आविष्कार हुआ। यह सब कुछ हुआ किन्तु इन सब की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्व शाली बात हुई "व्याकरण की प्रतिष्ठा"। भारतेन्दु के क्रान्ति

युग में कविता को रीति की संकीर्णता से निकाल कर विस्तृत उपवन में लाया गया। उसके कुछ काल पश्चात्, जब कि हिन्दी गद्य का परिष्कार तथा परिमार्जन हुआ तब पद्य में भी कुछ कुछ संशोधन किया गया। किन्तु अभी तक खड़ी बोली में कर्कशता विद्यमान थी।

३७—पण्डित श्रीधर पाठक तथा महावीरप्रसाद जी द्विवेदी ने जो इस युग में खड़ी बोली की कविता के प्रथम लेखक और आचार्य हुए, इस न्यूनता को यथासाध्य दूर किया। पाठक जी ने खड़ी बोली में कवित्व का विकास किया और द्विवेदी जी ने भाषा के अनिश्चित रूप को दूर कर उसे सुधारते हुए काव्योपयुक्त बनाने की चेष्टा की। द्विवेदी जी के अनुयायियों में आगे चल कर अनेक प्रसिद्ध कवि हुए, जिनमें बाबू मैथिली-शरण गुप्त सब से अधिक यशस्वी हैं।

३८—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय तथा पं० नाथूराम जी शंकर ने द्विवेदी जी के प्रभाव से बाहर रह कर काव्य रचना की। उपाध्याय जी के "प्रियप्रवास" में कवित्व का रुचिर तथा व्यापक उन्मेष है। शंकर जी की कतिपय कृतियों में उत्तम कोटि के कवित्व की झलक विद्यमान है।

३९—आधुनिक खड़ी बोली के सब से अधिक प्रसिद्ध कवि बा० मैथिलीशरण गुप्त हैं। द्विवेदी जी की छत्र छाया में रह कर उन्होंने अपनी भाषा को संयत, रुचिर तथा प्रांजल बनाया।

द्विवेदी जी की भांति उनकी भाषा में संस्कृत का पुट रहता है किन्तु 'प्रिय प्रवास' की भांति उनकी कविता संस्कृत मयी नहीं होती। उर्दू के बहुत ही थोड़े शब्दों को अपनाने के कारण वे पण्डित गयाप्रसाद जी की उर्दू मिश्रित कविता शैली से भी विभिन्न रूप में हमारे संमुख आते हैं। इस प्रकार भाषा की दृष्टि से उनका मार्ग बीच का है। लोकप्रियता की दृष्टि से गुप्त जी सब से ऊपर हैं। उनकी भारत-भारती आज भी देशभक्त नवयुवकोंका कंठहार हो रही है। काव्य की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व नहीं है। उनके जयद्रथ वध नामक खंड काव्य में वीररस का परिपाक है, और उनकी 'पंचवटी' में लक्ष्मण का चरित्र मार्के का है। आपका "साकेत" नामक महाकाव्य चिरस्थायी होगा। माइकेल मधुसूदन दत्त रचित 'मेघनादवध' वीरांगना, विरहिणी व्रजाङ्गना आदि के हिन्दी अनुवाद में भी आप को अद्भुत सफलता प्राप्त हुई है।

४०—उर्दू मिश्रित हिन्दी भाषा में कविता करने वालों के नेता पण्डित गयाप्रसाद शुक्ल तथा लाला भगवानदीन हैं। दोनों की ओजस्विनी कृतियों में राष्ट्रीयता का फड़कता हुआ चित्रण है। पं० माखन लाल चतुर्वेदी तथा पंडित बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने भी देशसेवा में अच्छी कविता की है। व्यापक सौन्दर्य तत्त्व की पूजा करने वाले कवियों में पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का नाम उल्लेख योग्य है। अपनी मार्मिक दार्शनिकता के सहारे वे वन्य प्रकृति के उजाड़ और सूने कोने में भी उसी स्निग्ध सौन्दर्य

के दर्शन करते हैं जो हमें कमल तथा कुमुदिनियों पर मुसकराता दिखाई देता है।

४१—पंडित रामनरेश त्रिपठी ने 'मिलन' 'पथिक' तथा 'स्वप्न' नामक खण्ड काव्यों की रचना करके हिन्दी की स्तुत्य सेवा की है। उनकी कृति में संस्कृत की सुरभि है और राष्ट्रीयता का पराग। 'विधवा का दर्पण' नाम की उनकी मुक्तक कृति पठनीय है।

४२—व्रजभाषा के आधुनिक कवियों में हरिश्चन्द्र के उपरांत प्रेमघन, श्रीधर पाठक, पं० सत्यनारायण शर्मा तथा बा० जगन्नाथदास रत्नाकर के नाम उल्लेख योग्य हैं। कानपुर के राय देवीप्रसाद पूर्ण भी व्रजभाषा में अच्छी कविता करते थे। इस दृष्टि से उनका 'चन्द्रकला भानुकुमार' नामक नाटक उत्कृष्ट है। पं० सत्यनारायण जी कविरत्न के 'हृदय तरंग' में कविता की माधुरी लबालब भरी है। इस दृष्टि से उनका 'मालतीमाधव' कहीं कहीं संस्कृत की मौलिक कृति को पीछे छोड़ गया है। रत्नाकर जी की कृतियों में 'हरिश्चन्द्र काव्य' तथा 'गंगावतरण' श्रेष्ठ हैं। व्रजभाषा के आधुनिक कवियों में श्रीयुत वियोगी हरि जी का भी ऊँचा स्थान है। ये भक्त हैं, दार्शनिक हैं और वीर रस की कविता में आनन्द लेते हैं।

४३—इस युग के अन्य कवियों में पण्डित रूपनारायण पाण्डेय, बा० सियारामशरण गुप्त, पं० रामचरित उपाध्याय, पं० लोचन

प्रसाद पांडेय, ठाकुर गोपालशरणसिंह और श्रीमती सुभद्रा-कुमारी चौहान आदि के नाम उल्लेख योग्य हैं।

४४—छायावाद—हिन्दी की काव्यधारा का सामान्य परिचय ऊपर दिया गया है। अब कुछ काल से हिन्दी में रहस्यवाद अथवा छायावाद की कविता के दर्शन हुए हैं। इस विषय में हिन्दी साहित्य श्रीयुत रवीन्द्रनाथ जी का ऋणी है।

४५—बाबू जयशंकर प्रसाद पहले ही से रहस्यवाद की कविता कर रहे हैं। उनकी कविता में सूफी कवियों का ढङ्ग पाया जाता है और अंग्रेज़ी कविता की पालिश झलकती है। इनकी कविता में संस्कृत के शब्द अधिक रहते हैं। अद्वैतवाद का आधार लेकर रहस्य का व्याख्यान करने वाले हिन्दी कवियों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी श्रेष्ठ हैं। उन्होंने तथा पंडित सुमित्रा-नन्दन पन्त ने पश्चिम से बहुत कुछ सीखा है और रवीन्द्रनाथ तथा वैष्णव कवियों से सहायता ली है। "सामूहिक दृष्टि से देखने पर छायावादी कवियों में श्री सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाएं सर्व श्रेष्ठ ठहरती हैं।" उनकी उड़ान ऊंची है, उनकी वेदना सूक्ष्म तथा मार्मिक है, उनके शब्दों में आत्मानुभूति की झलक है और उनकी रचना में चरम सौन्दर्य का भव्य उन्मेष है। पं० मोहन लाल महतो की रचना में भी रहस्य का चोखा चमत्कार है।

४६—अब तक हमने वर्तमान हिन्दी कवियों पर सूक्ष्म रूप से

विचार किया है और उनकी शैलियों पर भग्न प्रकाश डाला है। इनकी कविता विश्वजनीन है या नहीं इस बात का निर्णय समय करेगा। कुछ भी हो हमें परिवर्तन काल की कठिनाइयों पर ध्यान देते हुए उनका ऋणी होना चाहिये। याद रहे नैसर्गिक प्रतिभा सब में नहीं हुआ करती। शताब्दियों की सामान्य प्रतिभाओं का समष्ट्यात्मक अविकल प्रकाशन तो विरले ही कवियों में हुआ करता है। आकस्मिक और विलक्षण कहलाने वाली प्रतिभाएं छोटी छोटी असंख्य प्रतिभाओं का उद्भास मात्र होती हैं। कबीर तुलसी और सूर की लोकोत्तर रचनाओं में उनके प्राग्गामी अनेक भक्तों की रागोन्मुख भक्ति का अविकल प्रस्फुटन हुआ था। वर्तमान हिन्दी कवियों ने बड़े परिश्रम से ऐसी परिस्थिति ला दी है जिसमें किसी न किसी लोकोत्तर प्रतिभा का आलोकित होना अवश्यंभावी है। उसके व्यापक प्रकाश में इन टिमटिमाते दीपकों के मन्द पड़ जाने ही में इनका महत्त्व है। परन्तु इनकी उपयोगिता का एकान्ततः नष्ट हो जाना उतना ही असंभव है जितना कि वह हमारे लिये हानिकर है। हमारे जीवन में ऐसे अन्धकारमय कोने भी होते हैं जहां व्यापक प्रतिभाओं की पहुंच नहीं होती। ऐसे कोने में हम इन्हीं दीवारगिरिओं से अपना काम चलाते हैं। इस में सन्देह नहीं कि हरिश्चन्द्र से लेकर आज तक एक भी ऐसा कवि नहीं उपजा जिसकी रचना तुलसी अथवा सूर की रचनाओं से टक्कर ले सके; किन्तु इसके साथ हम यह भी

कहेंगे कि इन दिनों का हिन्दी समुद्र किसी ऐसे आन्दोलन से आलोडित भी नहीं हुआ जिसका सांमुख्य फ्रांस की राज्यक्रान्ति, इंगलैण्ड के शेक्सपेरियन युग अथवा रूस के राज्य विल्पव से किया जा सके। समाज की इन उद्दण्ड क्रान्तियों में समाज के युगयुगागत भावों तथा सिद्धान्तों का क्रियात्मक संघर्ष होता है। आवश्यकता के समय अकस्मात् उदित होने वाली प्रतिभाओं में इस संघर्ष का वाचात्मक प्रकाशन होता है। भारत में बंग-विच्छेद तथा ख़िलाफ़त जैसे आन्दोलन हुए। फलतः यहां कवि श्रेष्ठ रवीन्द्र तथा ऋषिवर्य गान्धी के दर्शन हुए। अभी हिन्दी कवियों को समाज ने कोई ऐसे नये विचार अथवा वेदनामयी भावनाएं नहीं दीं जिनके आधार पर वे किसी प्रकार की विश्व जनीन कविता का निर्माण कर सकते। जिस अकर्मण्य संतोष के साथ हम अपने पुराण धार्मिक विश्वासों और संकीर्ण सामाजिक संस्कारों में अपना जीवन घसीटते आए हैं उसी शिथिलता के साथ हमारे जीवन व्याख्याता कवियों ने प्राचीन काव्यकला के आधार पर निर्जीव कविताएं की हैं। जिस हिचक के साथ हम ने नवीन संस्कृति तथा पद्धति को अपनाया है उसी झिझक के साथ उन्होंने नये विषयों तथा शैलियों का आंचल पकड़ा है। अतीत का अन्धप्रेम हम से अब तक नहीं छूटा है। वर्तमान का यथार्थ आशय हम ने अब तक नहीं समझा है। भविष्य का सर्वाङ्गीण चित्र हमारे संमुख अब तक नहीं आया है। इन कठिनाइयों के निबिड कानन में से

हमारे वर्तमान कवियों ने पगडण्डियां निकाली हैं। उन पर राजपथ बनाना हमारा काम है। हमारे संमुख भिन्न भिन्न प्रकार की शैलियां उपस्थित हैं। सौभाग्य से खड़ी बोली और व्रज-भाषा के वादविवाद का खड़ी बोली के पक्ष में निर्णय हो चुका है। इन सब सुविधाओं के प्राप्त होने पर हिन्दू नवयुवक तथा युवतियों को राष्ट्र भाषा हिन्दी के सर्वाङ्गीण विकास के लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये।

लाहौर
६ जूलाई १६३३

—सूर्यकान्त

शुद्धिपत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
मूढि	मूठि	२३	६
दुभांती	कुभांती	,,	६
घाम	घाव	२५	७
तैं ताई	रौताई	,,	१०
स्वभारू	खभारू	३४	१
जीवनि काया	जीवनिकाया	४२	८
गूलन	गूलर	६२	८
बराती	बाती	८३	२
धरै	घरै	,,	८
बलाये	बुलाये	१०६	५

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
झाई	झाँई	१२०	१२
बरात	बात	१२४	११
जाइ	जोइ	१४४	१०
२	१ (कवित्तों की संख्या ठीक करके पढ़िये)	१५१	
गुरूवश्यता	गुरुवश्यता	२०६	हेडिंग
बाझ	बोझ	२२७	१
पद्वमान	पवमान	२४४	२
अच्छर्नाधि	अच्छर निधि	३१८	१५

विषय-सूची

प्रथम तरङ्ग

द्वितीय तरङ्ग

२. कबीर

तृतीय तरङ्ग

हिन्दीविलास

प्रथम तरंग

तुलसीदास रामायण

परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद

तेहि अवसर सुनि शिव-धनु-भंगा। आये भृगुकुल-कमल-पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर सरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुण्ड विराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा॥
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते। सहजहुँ चितवत मनहुँ रिसाते॥
वृषभ कन्ध उर बाहु विशाला। चारु जनेउ माल मृगछाला॥
कटि मुनिबसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे॥

सन्त वेष करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रस आयउ जहँ सब भूप॥

देखत भृगुपति बेषु कराला । उठे सकल भय बिकल भुवाला ॥
पितु समेत कहि निज निज नामा । लगे करन सब दण्ड प्रणामा ॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी । सो जानइ जनु आइ खुटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा । सीय बोलाइ प्रणाम करावा ॥
आसिष दीन्हि सखी हरषानी । निज समाज लेइ गई सयानी ॥
विस्वामित्र मिले पुनि आई । पद सरोज मेले दोउ भाई ॥
राम लषन दशरथ के ढोटा । देखि असीस दीन्ह भल जोटा ॥

बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर ।
पूछत जानि अजान जिमि व्यापे कोप सरीर ॥

समाचार कहि जनक सुनाये । जेहि कारण महीप सब आये ॥
सुनत बचन तब अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड जनक धनुष केइ तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू । उलटउँ महि जहँ लगि तव राजू ॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछताति सीय महतारी । बिधि अब सबरी बात बिगारी ॥
भृगुपति कर प्रभाव सुनि सीता । अरध निमेष कलप सम बीता ॥

सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीर ।
हृदय न हरष विषाद कछु बोले श्री रघुबीर ॥

नाथ संभु-धनु भंजनहारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥

आयसु काह कहिय किन मोही। सुनि रिसाय बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करइ सेवकाई। अरि करनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेइ सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। नत मारे जइहैं सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहिं अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगु-कुल-केतू॥

रे नृपबालक! कालबस बोलत तोहि न संभार।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु बिदित सकल संसार॥

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे॥
छुवत टूट रघुपतिहु न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ! सुनेहि सुभाउ न मोरा॥
बालक बोलि बधउँ नहिं तोही। केवल मुनि जड जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्वबिदित छत्रिय कुल द्रोही॥
भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही॥
सहसबाहु—भुज—छेदनि हारा। परसु बिलोकु महीप—कुमारा॥

मातुपितहि जनि सोच बस करसि महीप किसोर।
गरभन के अरभक दलन परसु मोर अति घोर॥

बिहँसि लखन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महा भटमानी॥

पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू । चहत उड़ावन फूँकि पहारू ॥
इहां कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं । जे तरजनी देखि मरि जाहीं ॥
देखि कुठार सरासन बाना । मैं कछु कहेउँ सहित अभिमाना ॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी । जो कछु कहेहु सहउँ रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरे कुल इन्ह पर न सुराई ॥
बधे पाप अपकीरति हारे । मारतहू पा परिय तुम्हारे ॥
कोटि कुलिससम बचन तुम्हारा । व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा ॥

जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महामुनि धीर ।
सुनि सरोष भृगु-बंस-मनि बोले गिरा गंभीर ॥

कौसिक सुनहु मन्द यह बालक । कुटिल कालबस निज-कुल-घालक ॥
भानु-बंस-राकेस-कलंकू । निपट निरंकुस अबुध असंकू ॥
काल-कवलु होइहि छन माहीं । कहउँ पुकारि खोरि मोहि नाहीं ॥
तुम्ह हटक्हु जौं चहहु उबारा । कहि प्रताप बल रोष हमारा ॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा । तुम्हहिं अछत को बरनइ पारा ॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी । बार अनेक भांति बहु बरनी ॥
नहि सन्तोष तौ पुनि कछु कहहू । जनि रिसरोकि दुसह दुख सहहू ॥
बीर बृत्ति तुम धीर अछोभा । गारी देत न पावहु सोभा ॥

सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु ।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलापु ॥

तुम्ह तौ काल हांक जनु लावा । बार बार मोहि लागि बोलावा ॥

सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
अब जनि देइँ दोष मोहि लोगू। कटु-बादी बालक बध जोगू॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा। अब यह मरनहार भा सांचा॥
कौसिक कहा छमिय अपराधू। बाल दोष गुन गनहि न साधू॥
कर कुठार मैं अकरन कोही। आगे अपराधी गुरु द्रोही॥
उतर देत छाडउँ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
नतु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहि उरिन होतेउँ स्रम थोरे॥

गाधि-सूनु कह हृदय हँसि मुनिहि हरि अरइ सूझ।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि अजहुँ न बूझ अबूझ॥

कहेउ लषन मुनि सील तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन भये नीके। गुरुहित रहा सोच बड़ जी के॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गयउ ब्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिय ब्यवहरिया बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटुबचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचउ नृप द्रोही॥
मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढे॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहिं लषन निबारे॥

लषन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु।
बढ़त देखि जलसम बचन बोले रघु-कुल-भानु॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध-मुख करिय न कोहू॥

जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना । तौकि बराबरि करइ अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं । गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी । तुम्ह सम सील धीर मुनि ज्ञानी ॥
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने । कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी । राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर शरीर स्याम मन माहीं । कालकूट-मुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरइ न तोही । नीच मीच सम देख न मोही ॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल ।
जेहि बस जन अनुचित करहिं करहिं बिस्व प्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनि-राया । परिहरि कोप करिय अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने । बैठिय होइहहिं पाय पिराने ॥
जौं अति प्रिय तौ करिय उपाई । जोरिय कोउ बड़ गुनी बोलाई ॥
बोलत लषनहिं जनक डराहीं । मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ॥
थरथर कांपहिं पुर-नर-नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी ॥
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी । रिस तन जरइ होइ बलहानी ॥
बोले रामहिं देइ निहोरा । बचउँ विचारि बन्धु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे । विष रस भरा कनक घट जैसे ॥

सुनि लछमन विहँसे बहुरि नयन तरेरे राम ।
गुरु समीप गवने सकुचि परिहरि बानी बाम ॥

अति विनीत मृदु सीतल बानी । बोले राम जोरि जुग पानी ॥

सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिय नहिं काना ॥
बररै बालक एक सुभाऊ। इन्हहिं न सन्त बिदूषहिं काऊ ॥
तेहि नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोप बध बंध गोसाईं। मो पर करिय दास की नाईं ॥
कहिय बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करउँ उपाई ॥
कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे ॥
एहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोप करि कीन्हा ॥

गर्भ स्रवहिं अवनि परवंनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखेउँ जियत बैरी भूप-किशोर ॥

बहइ न हाथ दहइ रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती ॥
भयेउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कसि काऊ ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्र बहुरि सिरु नावा ॥
बाइ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला ॥
जौं पै कृपा जरहिं मुनि गाता। क्रोध भये तन राखु बिधाता ॥
देखु जनक हठि बालक एहू। कीन्ह चहत जड जमपुर गेहू ॥
बेगि करहु किन आंखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥
बिहँसे लपन कहा मुनि पाहीं। मूँदे आंखि कतहुँ कोउ नाहीं ॥

परशुराम तब राम प्रति बोले उर अति क्रोध।
सम्भु सरासन तोरि सठ करसि हमार प्रबोध ॥

बन्धु कहइ कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे ॥

करु परितोष मोर संग्रामा । नाहिं तो छाड़ु कहाउब रामा ॥
छल तजि करहि समर सिवद्रोही । बन्धु सहित नत मारउँ तोही ॥
भृगुपति बकहिं कुठार उठाये । मन मुसुकाहिं राम सिर नाये ॥
गुनहु लषन कर हम पर रोपू । कतहुँ सुधाइहु तें बड़ दोषू ॥
टेढ जानि बन्दइ सब काहू । बक्र चन्द्रमहि ग्रसइ न राहू ॥
राम कहेउ रिस तजहु मुनीसा । कर कुठार आगे यह सीसा ॥
जेहि रिस जाइ करिय सोइ स्वामी । मोहि जानिए आपन अनुगामी ॥

प्रभु सेवकहि समर कस तजहु बिप्रवर रोसु ।
बेष बिलोकि कहेसि कछु बालकहू नहिं दोसु ॥

देखि कुठार बान धनु धारी । भइ लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहि न चीन्हा । वंस सुभाव उतरु तेइ दीन्हा ॥
जौं तुम्ह अवतेहु मुनि की नाईं । पद-रज सिर सिसु धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । चाहिए विप्र-उर कृपा घनेरी ॥
हमहिं तुम्हहिं सरबर कस नाथा । कहहु न कहां चरण कहं माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा ॥
देव एक गुन धनुष हमारे । नव गुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे । छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥

वार वार मुनि बिप्रवर कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुष होइ तहूँ बन्धु सम बाम ॥

निपटहि द्विज करि जानहि मोही । मैं जस बिप्र सुनावहुँ तोही ॥

चाप स्रुवा सर आहुति जानू । कोप मोर अति घोर कृसानू ॥
समिध सेन चतुरङ्ग सुहाई । महामहीप भये पसु आई ॥
मैं यह परसु काटि बलि दीन्हे । समर जज्ञ जग कोटिक कीन्हे ॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा । अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा ॥
राम कहा मुनि कहहु विचारी । रिस अति बडि लघु चूक हमारी ॥
छुवतहि टूट पिनाक पुराना । मैं केहि हेतु करउँ अभिमाना ॥

जौं हम निदरिहिं विप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भयवस नावहिं माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना । समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जौं रन हमहिं प्रचारइ कोऊ । लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना । कुल कलंक तेहि पामर जाना ॥
कहउं सुभाव न कुलहि प्रसंसी । कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ॥
विप्र बंस कै असि प्रभुताई । अभय होइ जो तुम्हहि डेराई ॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के । उघरे पटल परसुधर मति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू । खैंचहु मिटइ मोर सन्देहू ॥
देत चाप आपुहि चलि गयेऊ । परसुराम मन विसमय भयेऊ ॥

जाना राम प्रभाव तब पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन हृदय न प्रेम समात ॥

जय रघुबंस बनज बन भानू । गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥

जय सुर-विप्र-धेनु-हित-कारी । जय मद-मोह-कोह-भ्रमहारी ॥
विनय सील करुना गुन सागर । जयति बचन-रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अङ्गा । जय सरीर छवि कोटि अनङ्गा ॥
करउँ काह मुख एक प्रसंसा । जय महेस-मन-मानस-हंसा ॥
अनुचित बचन कहेऊँ अज्ञाता । छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघु-कुल-केतू । भृगुपति गये बनहिं तप हेतू ॥
अपभय सकल महीप डेराने । जहँ तहँ कायर गवहिं पराने ॥

देवन दीन्ही दुन्दभी प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब मिटा मोह मय सूल ॥

❀ ❀ ❀

मन्थरा-कैकेयी-सम्वाद

बाजहिं बाजन बिविध बिधाना । पुर प्रमोद नहिं जाइ बखाना ॥
भरत आगमनु सकल मनावहिं । आवहिं बेगि नयन फल पावहिं ॥
हाट बाट घर गली अथाई । कहहिं परसपर लोग लुगाई ॥
कालि लगन भलि केतिक बारा । पूजिहि बिधि अभिलापु हमारा ॥
कनक-सिंहासन सीय समेता । बैठहिं राम होइ चित चेता ॥
सकल कहहिं कब होइहि काली । बिघन मनावहिं देव कुचाली ॥
तिन्हहिं सुहाइ न अवध बधावा । चोरहिं चांदनि राति न भावा ॥
सादर बोलि बिनय सुर करहीं । बारहिं बार पांय लै परहीं ॥

बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिय सोइ आजु ।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ॥

सुनि सुर बिनय ठाढि पछिताती। भयउँ सरोज-बिपिन हिमराती॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी॥
बिसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइय अवध देव हित लागी॥
बार बार गहि चरण सँकोची। चली बिचार विबुधमति पोची॥
ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥
आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहिं चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रह दसा दुसह दुखदाई॥

नामु मन्थरा मन्द मति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

दीख मन्थरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। रामतिलक सुनि भा उर दाहू॥
करइ बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाज कवनि बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकहि लेउँ केहि भांती॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ नहिं लेइ उसासू। नारि-चरित करि ढारइ आंसू॥
हँसि कह रानि गाल बड़ तोरे। दीन्ह लषन सिख अस मन मोरे॥
तबहुँ न बोल चेरि बडि पापिनि। छांडइ स्वास कारि जनु सांपिनि॥

सभय रानि कह कहसि किन कुशल रामु महिपालु।
लषनु भरतु रिपु-दमनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहिं छाडि कुसल केहि आजू। जिनहिं जनेसु देइ जुबराजू॥
भयउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिं न॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे॥
नींद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावउँ तोरी॥

काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि॥

प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर-कुल रीति सुहाई॥
राम तिलकु जौं साचेउ काली। देउँ मांगु मन भावत आली॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय पियारी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहिं राम सिय पूत पतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे॥

भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमय करसि कारन मोहि सुनाउ॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरइ जोग कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रउरेहिं लागा॥
कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई॥
हमहुँ कहब अब ठकुर सुहाती। नाहित मौन रहब दिन राती॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिय लहिय जो दीन्हा॥
कोउ नृप होय हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाय तुम्हारा॥
तो तें कछुक बात अनुसारी। छमिय देवि बडि चूक हमारी॥

गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधर बुधि रानि।
सुर-माया-बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतियानि॥

सादर पुनि पुनि पूछति ओही। सबरी-गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥
तुम्ह पूछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेउ मोर घरफोरी नाऊँ॥
सजि प्रतीति बहु बिधि गढ़ि छोली। अवध साढ़ साती तब बोली॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहिं तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहिं पिरीते॥
भानु-कमल-कुल-पोषनिहारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा॥
जर तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाय बरबारी॥

तुम्हहिं न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृप राउर सरल सुभाउ॥

चतुर गंभीर राम-महतारी । बीचु पाइ निज बात सवांरी ॥
पठये भरतु भूप ननिअउरे । राम मातु मत जानब रउरे ॥
सेवहिं सकल सवति मोहि नीके । गरबित भरत मातु बल पीके ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई । कपट चतुर नहिं होइ जनाई ॥
राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेखी । सवति सुभाव सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम-तिलक-हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहि सुहाइ मोहि सुठ नीका ॥
आगिल बात समुझि डर मोही । देउ दैव फिरि सो फलु ओही ॥

रचि पटि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोध ।
कहेसि कथा सत सवति कै जेहि बिधि बाढ बिरोध ॥

भावीवस प्रतीति उर आई । पूछु रानि पुनि सपथ देवाई ॥
का पूछहु तुम्ह अबहु न जाना । निजहित अनहित पसु पहिचाना ॥
भयउ पाखु दिन सजत समाजू । तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू ॥
खाइय पहिरिय राज तुम्हारे । सत्य कहे नहिं दोषु हमारे ॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई । तौ बिधि देइहि हमहिं सजाई ॥
रामहिं तिलक कालि जौं भयऊ । तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ ॥
रेख खँचाइ कहउँ बल भाखी । भामिनि भइहु दूध कइ माखी ॥
जौं सुतसहित करहु सेवकाई । तौ घर रहहु न आन उपाई ॥

कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहिं कौसिला देव ।
भरतु बन्दिगृह सेइहहिं लषनु राम के नेब ॥

कैकयसुता सुनत कटु बानी । कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि कांपी । कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरज धरहु प्रबोधेसि रानी ॥
कीन्हेसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू । जिमि न नवइ फिरि उकठ कुकाठू ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली । बकिहि सराहइ मानि मराली ॥
सुनु मन्थरा बात फुरि तोरी । दाहिन आंखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने । कहहुँ न तोहि मोह बस अपने ॥
काह करउँ सखि सूध सुभाऊ । दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥

अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह ।
केहि अघ एकहि बार मोहि दैव दुसह दुख दीन्ह ॥

नैहर जनमु भरब बरु जाई । जियत न करब सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैव जियावत जाही । मरनु नीक तेहि जीव न चाही ।
दीन बचन कह बहु बिधि रानी । सुनि कुबरी तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना । सुख सोहागु तुम्ह कहँ दिन दूना ॥
जेइ राउर अति अनभल ताका । सोइ पाइहि यह फलु परिपाका ॥
जब तें कुमत सुना मैं स्वामिनि । भूख न बासर नींद न जामिनि ॥
पूछेउं गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची । भरत भुआल होहिं यह साँची ॥
भामिनि करहु न कहउं उपाऊ । हैं तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥

परउं कूप तव बचन पर सकउं पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुख देखि बड कस न करब हित लागि ॥

कुबरी करि कबूलि कैकेई। कपटछुरी उरपाहन टेई॥
लखइ न रानि निकट दुख कैसे। चरइ हरित तृन बलिपसु जैसे॥
सुनत बात मृदु अन्त कठोरी। देति मनहुं मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं॥
दुइ बरदान भूप मन थाती। मांगहु आज जुडावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहिं बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥
भूयत राम सपथ जब करई। तब मांगहु जेहि बचन न टरई॥
होइ अकाजु आजु निस बीते। बचनु मोर प्रिय मानेउ जी ते॥

बड कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सब सहसा जनि पतियाहु॥

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बडि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु नं मोर संसारा। बहे जात कर भइसि अधारा॥
जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करउं तोहि चखपूतरि आली॥
बहुबिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई॥

❀ ❀ ❀

दशरथ-कैकेयी-सम्वाद

बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि ।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर ॥
अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा । केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू । कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥
सकउँ तोर अरि अमरउ मारी । काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू । मन तव आनन चन्द चकोरू ॥
प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरे । परिजन प्रजा सकल बस तोरे ॥
जौं कछु कहउँ कपट करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ॥
बिहँसि मांगु मन भावति बाता । भूषन सजहि मनोहर गाता ॥

बरी कुघरी समुझि जिय देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेखू॥
यह सुनि मन गुनि सपथ बडि बिहँसि उठी मतिमन्द।
भूषन सजति बिलोकि मृग मनहुँ किरातिनि फन्द॥
पुनि कह राउ सुहृद जिय जानी। प्रेम पुलकि मृदु मञ्जुल बानी॥
भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनन्द बधावा॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू॥
दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बर तोरू॥
ऐसेउ पीर बिहँसि तेइ गोई। चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई॥
लखी न भूप कपट चतुराई। कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई॥
जद्यपि नीति निपुन नर नाहू। नारि चरित जल निधि अनगाहू॥
कपट सनेह बढ़ाइ बहोरी। बोली विहँसि नयन मुँह मोरी॥
मांगु मांगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत सन्देहु॥
जानेउँ मरम राउ हँसि कहई। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई॥
थाती राखि न मांगेहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ॥
झूठेहु हमहिं दोष जनि देहू। दुइ कै चारि मांगि किन लेहू॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई॥
नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाये। वेद पुरान विदित मुनि गाये॥
तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई॥

बात दृढाइ कुमति हँसि बोली । कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली ॥
भूप मनोरथ सुभग बन सुख सुबिहँग समाजु ।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचन भयङ्कर बाजु ॥
सुनहु प्रानप्रिय भावत जीका । देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागउँ दूसर बर कर जोरी । पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥
तापस बेष विसेषि उदासी । चौदह बरिस राम बन बासी ॥
सुनि मृदुबचन भूपहियसोकू । ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा । जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू । दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू ॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन । तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथ सुर तरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई । दीन्हेसि अचल बिपति कै नेई ।
कवने अवसर का भयउ गयउँ नारिबिस्वास ।
जोगसिद्धि फल समय जिमि जतिहि अविद्यानास ॥
एहि बिधि राउ मनहिं मन झांखा । देखि कुभाँति कुमति मनु मांखा ॥
भरत कि राउर पूत न होहीं । आनेहुं मोल बेसाहि कि मोहीं ॥
जो सुनि सर अस लागु तुम्हारे । काहे न बोलहु बचनु सँभारे ॥
देहु उतर अरु कहहु कि नाहीं । सत्यसन्ध तुम रघुकुल माहीं ॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू । तजहु सत्य जग अपयस लेहू ॥
सत्य सराहि कहेहु बरु देना । जानेहु लेइहि मांगि चबेना ॥

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा । तनु धनु तजेउ बचनपन राखा ॥
अति कटु बचन कहति कैकेई । मानहुँ लोन जरे पर देई ॥

धरमधुरन्धर धीर धरि नयन उघारे राय ।
सिर धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय ॥

आगे दीखि जरति रिसि भारी । मनहुँ रोष तरवारि उघारी ॥
मूढि कुबुद्धि धार निठुराई । धरी कूबरी सान बनाई ॥
लखी महीप कराल कठोरा । सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोलेउ राउ कठिन करि छाती । बानी सबिनय तासु सोहाती ॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती । भीरु प्रतीत प्रीत करि हाँती ॥
मोरे भरत राम दुइ आँखी । सत्य कहउँ करि संकर साखी ॥
अवसि दूत मैं पठउब प्राता । एइहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिन सोधि सब साजु सजाई । देउँ भरत कहुँ राजु बजाई ॥

लोभु न रामहिं राजुकर बहुत भरत पर प्रीति ।
मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउँ नृपनीति ॥

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ । राममातु कछु कहेउ न काऊ ॥
मैं सब कीन्ह तोहि बिनु पूछे । तेहितें परेउ मनोरथ छूछे ॥
रिस परिहरु अब मंगलसाजू । कछु दिन गये भरत जुवराजू ॥
एकहि बात मोहि दुख लागा । बर दूसर असमंजस मांगा ॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आंचा । रिस परिहास कि सांचेहु सांचा ॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू । सब कोउ कहइ राम सुठि साधू ॥

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू । अब सुनि मोहि भयउ सन्देहू ॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला । सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला ॥

प्रिया हास रिस परिहरहि मांगु बिचारि बिबेकु ।
जेहि देखउँ अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु ॥

जिअइ मीन बरु वारि बिहीना । मनि बिनु फनिक जिअइ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छल मन माहीं । जीवन मोर राम बिनु नाहीं ॥
समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना । जीवन राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई । मनहुँ अनल आहुति घृत परई ॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया । इहां न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजस करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ॥
राम साधु तुम्ह साधु सयाने । राम मातु भलि सब पहिचाने ॥
जस कोसिला मोर भल ताका । तस फल उन्हहिं देउँ करि साका ॥

होत प्रात मुनि बेष धरि जौं न राम बन जाहिं ।
मोर मरन राउर अजसु नृप समुझिय मन मांहिं ॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी । मानहुँ रोष तरंगिनि बाढी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई । भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा । भवँर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूप रूप तरु मूला । चली बिपति बारिधि अनुकूला ॥
लखी नरेस बात सब सांची । तियमिस मीच सीस पर नांची ॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी । जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥

मांगु माथ अबहीं देउँ तोही। रामबिरह जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहँ जेहिं तेहि भांती। नाहिं त जरिहि जनम भरि छाती॥

देखी व्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥

व्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलप तरु मनहुँ निपाता॥
कण्ठ सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीन दीन बिनु पानी॥
पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाम महुँ माहुर देई॥
जौं अन्तहु अस करतब रहेऊ। मांगु मांगु तुम्ह केहि बल कहेऊ॥
दुइ कि होइ इक समय भुआला। हसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि षेम कुसल तैं ताई॥
छाडहु बचन कि धीरज धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥
तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसंध कहँ तृन सम बरनी॥

मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोप न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर॥

चहत न भरत भूपतिहि भोरे। बिधि बस कुमति बसी जिय तोरे॥
सो सब मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥
सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई। सब गुन धाम राम प्रभुताई॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई॥
तोर कलंक मोर पछिताऊ। मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई॥

जब लगि जियऊँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिर पछतैहसि अन्त अभागी । मारसि गाइ नहारुहि लागी ॥

परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु ।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु ॥

राम राम रट बिकल भुआलू । जनु बिनु पंख भुअङ्ग बेहालू ॥
हृदय मनाव भोरु जनि होई । रामहिं जाइ कहइ जनि कोई ॥
उदय करहु जनि रबि रघु-कुल-गुर । अबध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कै कह कठिनाई । उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥
बिलपत नृपहि भयउ भिनुसारा । वीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पठहिं भाट गुन गावहिं गायक । सुनत नृपहि जनु लागहिं सायक ॥
मंगल सकल सुहाहिं न कैसे । सहगामिनिहिं विभूषन जैसे ॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू । राम दरस लालसा उछाहू ॥

* * *

राम के विनीत वचन

मन मुसकाइ भानु-कुल-भानू। राम सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा।

मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥

भरत प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ समाजा॥
सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहि बिषु मांगी॥

तेउ न पाइ अस समउ चुकाहीं । देखि बिचारि मातु मन माहीं ॥
अम्ब एक दुख मोहि बिसेखी । निपट बिकल नरनायक देखी ॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी । होति प्रतीति न मोहि महतारी ॥
राउ धीरु गुन उदधि अगाधू । भा मोहि तें कछु बड अपराधू ॥
तातें मोहि न कहत कछु राऊ । मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ ॥
देस काल अबसर अनुसारी । बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई । अनुचित छमब जानि लरिकाई ॥
अति लघु बात लागि दुख पावा । काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइहिं पूछिउँ माता । सुनि प्रसंगु भये सीतल गाता ॥

मंगल समय सनेह बस सोच परिहरिय तात ।
आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात ॥

धन्य जनम जगतीतल तासू । पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताके । प्रिय पितु मात प्रान सम जाके ॥
आयसु पालि जनम फल पाई । ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवउँ मांगी । चलिहउँ बनहि बहुरि पग लागी ॥
अस कहि रामु गवन तब कीन्हा । भूप सोकबस उतरु न दीन्हा ॥

राम-सीता सम्वाद्

कहि प्रिय बचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष ।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगटि बिपिन गुन दोष ।।

मातु समीप कहत सकुचाहीं । बोले समउ समुझि मन माहीं ।।
राजकुमारि सिखावन सुनहू । आनि भांति जिय जनि कछु गुनहू ।।
आपन मोर नीक जौं चहहू । बचन हमार मानि गृह रहहू ।।
आयसु मोरि सासु सेवकाई । सब बिधि भामिनि भवन भलाई ।।
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा । सादर सासु ससुर पद पूजा ।।
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी । होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ।।

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुझायेहु मृदु बानी ॥
कहउं सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥
गुरु स्रुति सम्मत धरम फल पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे गालव नहुष नरेस ॥
मैं पुनि करि प्रमान पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागिहि बारा । सुन्दरि सिखबन सुनहु हमारा ॥
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा । तौ तुम्ह दुख पाउब परिनामा ॥
कानन कठिन भयंकर भारी । घोर घाम हिम बारि बयारी ॥
कुस कंटक मग कांकर नाना । चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना ॥
चरन कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥
कन्दर खोह नदी नद नारे । अगम अगाध न जाहिं निहारे ॥
भालु बाघ बृक केहरि नागा । करहिं नाद सुनि धीरज भागा ॥
भूमि सयन बलकल बसन असन कन्द फल मूल ।
तेहि सदा सब दिन मिलहिं समय समय अनुकूल ॥
नर अहार रजनीचर करहीं । कपट वेष बिधि कोटिक करहीं ॥
लागइ अति पहार कर पानी । बिपिन बिपति नहिं जाइ बखानी ॥
ब्याल कराल बिहँग बन घोरा । निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आये । मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाये ॥
हंस गवनि तुम्ह नहिं बन जोगू । सुनि अपजसु मोहिं देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली । जियइ कि लवन पयोधि मराली ॥

नव रसाल बन बिहरनि सीला । सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी । चन्द बदनि दुख कानन भारी ॥

सहज सुहृद गुरुस्वामिसिख जो न करइ सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हितहानि ॥

सुनि मृदु बनन मनोहर पिय के । लोचन ललित भरे जल सियके ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे । चकइहि सरद चन्द निसि जैसे ॥
उतरु न आव बिकल बैदेही । तजन चहत सुचि स्वामि सनेही ॥
बरबस रोकि विलोचन बारी । धरि धीरज उर अवनिकुमारी ॥
लागि सासु पग कह कर जोरी । छमबि देवि बड़ि अबिनय मोरी ॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई । जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीखि मन माहीं । पिय बियोगसम दुख जग नाहीं ॥

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुरु सजन सहाई । सुत सुन्दर सुसील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते ॥
तन धन धाम धरनि पुरराजू । पति बिहीन सब सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषन भारू । जम जातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं । मो कहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिअ बिनु देह नदी बिनु बारी । तइसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद बिमल बिधु बदन निहारे ॥
खग मृग परिजन नगर बन बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुखमूल ॥
बनदेवी बनदेव उदारा । करिहहिं सासु ससुर सम सारा ॥
कुस किसलय साथरी सुहाई । प्रभु संग मंजु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू । अवध सौध सत सरिस पहारू ॥
छिनु छिनु प्रभुपद कमल बिलोकी । रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी ॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय बिषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु बियोग लव लेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपा निधाना ॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि । लेइअ संग मोहि छाडिअ जनि ॥
बिनती बहुत करउँ का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥
राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहि प्रान ।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान ॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
सबहि भांति पिय सेवा करिहउँ । मारग जनित सकल स्रम हरिहउँ ॥
पाय पखारि बैठ तरु छाहीं । करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं ॥
स्रमकन सहित स्याम तनु देखे । कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे ॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ॥
बार बार मृदु मूरति जोही । लागिहि तात बयारि न मोही ॥
को प्रभुसंग मोहि चितवनिहारा । सिंघ बधुहि जिमि ससक सियारा ॥

मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहँ भोगू ॥
ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदय बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पाँवर प्रान ॥

* * *

भरतागमन के समय लक्ष्मण का क्रोध और श्रीराम का उन्हें समझाना

लषन लखेउ प्रभु हृदय स्वभारू । कहत समय सम नीति बिचारू ।।
बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं । सेवक समय न ढीठ ढिठाईं ।।
तुम्ह सर्वज्ञ सिरोमनि स्वामी । आपनि समुझि कहउँ अनुगामी ।।

नाथ सुहृद सुठि सरल चित सील सनेह निधान ।
सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान ।।

बिषयी जीव पाइ प्रभुताई । मूढ मोहबस होहिं जनाई ।।
भरत नीतिरत साधु सुजाना । प्रभुपद प्रेम सकल जग जाना ।।

तेऊ आजु राजपदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई॥
कुटिल कुबन्धु कुअवसर ताकी। जानि राम बनबास एकाकी॥
करि कुमन्त्र मन साजि समाजू। आये करइ अकंटक राजू॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई। आये दल बटोरि दोउ भाई॥
जौं जिय होति न कपट कुचाली। केहि सुहाति रथ बाजि गजाली॥
भरतहि दोष देइ को जाये। जग बौराइ राजपद पाये॥

सासि गुरुतियगामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर जान।
लोक बेद तें बिमुख भा अधम न बेन समान॥

सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥
एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे राम जानि असहाई॥
समुझि परिहि सोउ आजु बिसेखी। समर सरोष राम मुख पेखी॥
इतना कहत नीति रस भूला। रनरस बिटप पुलक मिस फूला॥
प्रभुपद बन्दि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाखी॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचार न थोरा।
कहँ लगि सहिय रहिय मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे॥

छत्रि जाति रघुकुल जनम राम अनुज जग जान।
लातहुँ मारे चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥

उठि कर जोरि रजायसु मांगा। मनहुँ बीर रस सोवत जागा॥
बांधि जटा सिर कसि करि माथा। साजि सरासन सायक हाथा॥

आजु रामसेवक जसु लेऊँ। भरतहिं समर सिखावन देऊँ॥
राम निरादर कर फल पाई। सोवहु समर सेज दोउ भाई॥
आइ भला बन सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू॥
तैसेहि भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकर आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥

अति सरोष माषे लषन लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥

जग भयमगन गगन भइ बानी। लषन बाहु बल बिपुल बखानी॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा॥
अनुचित उचित काज कछु होऊ। समुझि करिय भल कह सब कोऊ॥
सहसा करि पाछे पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लषन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजपद भाई॥
जो अँचवत मांतहिं नृप तेई। नाहिं न साधु सभा जेहि सेई॥
सुनहु लषन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

भरतहि होइ न राजपद बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ॥

तिमिर तरुन तरनिहि सकु गिलई। गगन मगन मकु मेघहि मिलई॥
गोपद जल बूडहिं घट जोनी। सहज छमा बरु छाडइ छोनी॥

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमद भरतहिं भाई ॥
लषन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
सगुन षीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपंच बिधाता ॥
भरत हंस रबि बंस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्हि उजियारी ॥
कहत भरत गुन सील सुभाऊ। प्रेम-पयोधि मगन रघुराऊ ॥

सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सों प्रभु को कृपा निकेतु ॥

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि-कुल-अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥
लषन राम सिय सुनि सुर बानी। अति सुख लहेउ न जाइ बखानी ॥

विषाद् में विवेक

बरषा काल मेघ नभ छाये। गरजत लागत परम सुहाये॥

लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेखि।

गृही बिरति रत हरष जस विष्णु भगत कहुँ देखि॥

घन घमण्ड नभ गरजत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा॥

दामिनि दमकि रहत घन माहीं। खल कै प्रीति जथा थिर नाहीं॥

बरसहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध बिद्या पाये॥

बुन्द अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सह जैसे॥

छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल बौराई॥
भूमि परत भा डाबर पानी। ज़नु जीवहि माया लपटानी॥
सिमिटि सिमिटि जल भरहिं तलावा। जिमि सदगुन सज्जन पहिं आवा॥
सरिता जल जलनिधि महँु जाई। होहि अचल जिमि जिव हरि पाई॥

हरित भूमि तृन संकुल समुझि परहिं नहिं पन्थ।
जिमि पाखण्ड बिबाद तें गुप्त होहिं सद् ग्रन्थ॥

दादुर धुनि चहुँ ओर सुहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका॥
अर्क जवास पात बिन भयऊ। जस सुराज खल उद्यम गयऊ॥
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा॥
महाबृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि स्वतन्त्र भये बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहि मोह मद माना॥
देखियत चक्रबाक खग नाहीं। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराहीं॥
ऊसर बरषइ तृन नहिं जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा॥
बिबिध जन्तु संकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रियगन उपजे ज्ञाना॥

कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के ऊपजै कुल सद्धर्म नसाहिं॥

कबहुँ दिवस महँ निबिड तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसङ्ग॥

बरषा बिगत सरद ऋतु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढ़ाई॥
उदित अगस्त पन्थ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखइ सन्तोषा॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा। सन्त हृदय जस गत मद मोहा॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि सरद रितु खंजन आये। पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये॥
पंक न रेनु सोह असि धरनी। नीति निपुन नृप कै जसि करनी॥
जल संकोच बिकल भइ मीना। अबध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकासा। हरिजन इव परिहरि सब आसा॥
कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी॥

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ स्रम तजहिं आस्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निरगुन ब्रह्म सगुन भये जैसा॥
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा। सुंदर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निसि देखी। जिमि दुरजन पर सपंति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शंकर द्रोही॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सन्त दरस जिमि पातक टरई॥

देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं जिमि हरि जन हरि पाई ।।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा ।।
भूमि जीव संकुल रहे गये सरद रितु पाइ।
सद् गुरु मिले जाहिं जिमि संसय भ्रम समुदाइ ।।

* * *

भक्ति का माहात्म्य

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छल हीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करउँ चरन रज सेवा ॥
कहहु ज्ञान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥

ईश्वर जीवहि भेद प्रभु कहहु सकल समुझाइ।
जा तें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥

थोरेइ महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीवनि काया ॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥
ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥
कहिय तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥

माया ईस न आपु कहँ जान न हिय सो जीव।
बन्ध मोच्छप्रद सर्ब पर माया प्रेरक सीव॥

धर्म तें बिरति जोग तें ज्ञाना। ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जावें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना॥
भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला॥
भगति के साधन कहउँ बखानी। सुगम पन्थ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरण अति प्रीती। निज निज धरम निरत स्रुति रीती॥
यहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धरम उपज अनुरागा॥
स्रवनादिक नव भगति दृढाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
सन्त चरण पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा॥
गुरु पितु मातु बन्धु पति देवा। सब मोहिं कहँ जानइ दृढ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मैं ताके॥

बचन करम मन मोरि गति भजन करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महँ करउँ सदा बिस्राम॥
भगति जोग सुनि अति सुख पावा। लछमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥

मारीच हनन

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अङ्ग अङ्ग सुमनोहर वेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुन्दर छाला ॥
सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बांधा। करतल चाप रुचिर कर सांधा ॥
प्रभु लछिमनहिं कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥
सीता केरि करेहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥

प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी॥
निगम नेति सिव ध्यान न पावा। माया मृग पीछे सो धावा॥
कबहुँ निकट पुनि दूर पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। एहि बिधि प्रभुहि गयउ लेइ दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥
लछिमनि कै प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
अन्तर प्रेम तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना॥

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबन्धु रघुनाथ॥

राम का विषाद

लछिमन समुझाये बहु भांती। पूछत चले लता तरु पाती॥
हे खग मृग हे मधुकर स्रेनी। तुम्ह देखी सीता मृग नैनी॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रवीना॥
कुन्द कली दाडिम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी॥
बरुनपास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा॥
श्रीफल कनक कदलि हरपाहीं। नेकु न सङ्क सकुच मन माहीं॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी॥
पूरन काम राम सुख रासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी॥

❀ ❀ ❀

अनसूया का उपदेश

कह रिषि बधू सरस मृदु बानी। नारि धरम कछु ब्याज बखानी॥
मातु पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परखियहि चारी॥
बृद्ध रोग बस जड धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान सन्त सब कहहीं॥
उत्तम मध्यम नीच लघु सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिं सुनहु सीय चित लाइ॥

उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम पर पति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरम बिचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई॥
बिनु अवसर भय तें रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥
पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कलप सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धरम छाडि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

रावण तथा हनूमान का सम्वाद

कपिहि बिलोकि दसानन बिहँसा कहि दुर्बाद ।
सुत बध सुरति कीन्ह पुनि उपजा हृदय बिषाद॥

कह लंकेस कवन तैं कीसा । केहि के बल घालेसि बन खीसा ॥
की धौं स्रवन सुने नहिं मोही । देखउँ अति असंक सठ तोही ॥
मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ॥
सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ॥
जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दस सीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥
धरे जो बिबिध देह सुर त्राता । तुम्ह से सठन्ह सिखावन दाता ॥
हर कोदंड कठिन जेहि भंजा । तोहि समेत नृप दल मद गंजा ॥

खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

जाके बल लव लेस तें जितेहु चराचर झारि।

तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

जानउँ मैं तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई॥
समर बालि सन करि जस पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा॥
खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
सब के देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारगगामी॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बांधेउ तनय तुम्हारे॥
मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥
बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भयहारी॥
जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
ता सों बैरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरे कहे जानकी दीजै॥

प्रनतपाल रघुनायक करुनासिंधु खरारि।

गये सरन प्रभु राखिहहिं तव अपराध बिसारि॥

राम चरन-पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महँ जनि होहु कलंका॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाहीं। बरषि गये पुनि तबहिं सुखाहीं ॥
सुनु दसकंठ कहउँ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहिं कोपी ॥
संकर सहस बिष्णु अज तोही। सबहिं न राखि राम कर द्रोही ॥

मोह भूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान ॥

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नय सानी ॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुरु बड ज्ञानी ॥
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। अति भ्रम तोरि प्रगट मैं जाना ॥
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ कर प्राना ॥
सुनत निसाचर मारन धाये। सचिवन्ह सहित बिभीषन आये ॥
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता ॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबहीं कहा मन्त्र भल भाई ॥
सुनत बिहँसि बोला दस कंधर। अंग भंग करि पठइय बंदर ॥

कपि कै ममता पूँछि पर सबहिं कहेउ समुझाय।
तेल बोरि पट बांधि पुनि पावक देहु लगाइ ॥

पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहिं लेइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बडाई। देखउँ मैं तिन्ह कै प्रभुताई ॥
बचन सुनत कपि मन मुसुकाना। भइ सहाय सारद मैं जाना ॥

❀ ❀ ❀

अंगद-रावण-सम्वाद

कह दसकंठ कवन तैं बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकन्धर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिब बिरंचि पूजेहु बहु भांती॥
बर पायहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदम्बा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमहि प्रभु तोरा॥
दसन गहहु तृन कण्ठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनक सुता करि आगे। एहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे॥

प्रनतपाल रघुबंस मनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करहिंगे तोहि॥

रे कपि पोत न बोल सँभारी । मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नाते मानिये मिताई ॥
अंगद नाम बालि कर बेटा । तासों कबहुँ भई होइ भेंटा ॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना । रहा बालि बानर मैं जाना ॥
अंगद तहीं बालिकर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायहु । निज मुख तापस दूत कहायहु ॥
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई । बिहँसि बचन तव अङ्गद कहई ॥
दिन दस गये बालि पहँ जाई । पूछेउ कुसल सखा उर लाई ॥
राम बिरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके । श्री रघुबीर हृदय नहिं जाके ॥

हम कुल घालक सत्य तुम्ह कुल पालक दससीस ।
अन्धउ बहिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस ॥

सिब बिरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा । ऐसिहु मति उर बिहरु न तोरा ॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी । कहत दसानन नयन तरेरी ॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ । नीति धर्म मैं जानत अहऊँ ॥
कह कपि धर्म सीलता तोरी । हमहु सुनी कृत पर त्रिय चोरी ॥
देखी नयन दूत रखवारी । बूडि न मरहु धर्मव्रतधारी ॥
कान नाक बिनु भगनि निहारी । छमा कीन्ह तुम्ह धर्म बिचारी ॥
धर्म सीलता तव जग जागी । पावा दरस हमहूँ बडभागी ॥

जनि जल्पसि जड जन्तु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ॥
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥

तुम्हरे कटक मांझ सुनु अङ्गद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरह बल हीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीवँ कूल द्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढा । सो कि होइ अब समर अरूढा ॥
सिल्प कर्म जानहि नल नीला । है कपि एक महा बल सीला ॥
आवा प्रथम नगर जेहि जारा । सुनि हंसि बोलेउ बालि कुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसि चर नाहा । सांचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अलप कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीवँ केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

सत्य नगर कपि जारेऊ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।
फिरि न गयउ सुग्रीवँ पहिं तेहि भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहेहु दस कंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारे कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिय नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भलकि कहइ कोउ ताहि ॥

जद्यपि लघुता राम कहँ तोहि बधे बड दोष ।
तदपि कठिन दस कंठ सुनु छत्रि जाति कर रोष ॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस ।
प्रति उत्तर सडसिन्ह मनहुँ काढत भट दस सीस ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड गुन एक ।
जौ प्रति पालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥

धन्य कीस जौ निज प्रभु काजा । जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा ॥
नांचि कूदि करि लोग रिझाई । पति हित करइ धर्म निपुनाई ॥
अङ्गद स्वामिभक्त तव जाती । प्रभु गुन कस न कहसि एहि भांती ॥
मैं गुन गाहक परम सुजाना । तव कटु सुनि करउँ नहिं काना ॥
कह कपि तव गुन गाहक ताई । सत्य पवनसुत मोहि सुनाई ॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा । तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा ॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई । दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा । तुम्हरे लाज न रोष न माषा ॥
जौं असि मति पितु खायेहु कीसा । कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही । अबहीं समुझि परा कछु मोही ॥
बालि बिमल जस भाजन जानी । हतउँ न तोहि अधम अभिमानी ॥
कहु रावन रावन जग केते । मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते ॥
बलिहि जितन एकु गयउ पताला । राखा बांधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई । दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ॥

एक बहोरि सहस भुज देखा। धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा॥
कौतुक लागि भवन लेइ आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोडावा॥
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कांख।
तिन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥
सुनु सठ सोइ रावन बल सीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढाई॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ तिन्ह के उर साला॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥
जासु चलत डोलति इमि धरनी। चढत मत्त गज जिमि लघुतरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी॥
तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जान तव ज्ञान॥
सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु संभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥
जासु परसु सागर खर धारा। बूडे नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा॥
रामु मनुज कस रे सठ बंगा। धन्वी कामु नदी पुनि गंगा॥
पसु सुरधेनु कलपतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा॥

बैनतेय खग अहि सहसानन। चिन्तामनि पुनि उपल दसानन॥
सुनु मति मन्द लोक बैकुण्ठा। लाभु कि रघुपति भगति अकुण्ठा॥

सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि॥

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सर राखि न तोही॥
मूढ वृथा जनि मारसि गाला। राम बैर होइहि अस हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहिं धरनि राम सर लागे॥
ते तव सिर कन्दुक इव नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहिं समर कोपिहिं रघुनायक। छुटिहहिं अति कराल बहु सायक॥
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस बिचारि भजु राम उदारा॥
सुनत बचन रावनु परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥

कुम्भकरन अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि॥

सठ साखामृग जोरि सहाई। बांधा सिंधु इहइ प्रभुताई॥
लांघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु जड कीसा॥
मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूडे बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा॥

तौ बसीठ पठवत केहि काजा । रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा ॥
हर गिरि मथन निरखु ममबाहू । पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ॥
सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस ।
हुते अनल महँ बार बहु हरषि साषि गौरीस ॥
जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला । विधि के लिखे अङ्क निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बांची । हँसेउँ जानि बिधि गिरा असांची ॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरे । लिखा बिरंचि जरठ मति भोरे ॥
आन बीर बल सठ मम आगे । पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागे ॥
कह अङ्गद सलज्ज जग माहीं । रावन तोहि समान कोउ नाहीं ॥
लाज वंत तव सहज सुभाऊ । निज मुख निजगुन कहसि न काऊ ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही । ता तें बार बीस तैं कही ॥
सो भुज बल राखेहु उर घाली । जीतेहु सहसबाहु बलि बाली ॥
सुनु मति मंद देहि अब पूरा । काटे सीस कि होइय सूरा ॥
इन्द्र जालि कहँ कहिय न बीरा । काटइ निज कर सकल सरीरा ॥
जरहिं पतंग बिमोह बस भार बहहिं खर बृन्द ।
ते नहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मति मन्द ॥
अब जनि बत बढाव खल करही । सुनु मम बचन मान परिहरही ॥
दसमुख मैं न बसीठी आयेउँ । अस बिचारि रघु बीर पठायेउँ ॥
बार बार असि कहइ कृपाला । नहिं गजारि जस बधे सृगाला ॥
मन महँ समुझि बचन प्रभु केरे । सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥

नाहिं त करि मुख भंजन तोरा। लेइ जातेउँ सीतहिं बर जोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूने हरि आनेहि पर नारी॥
तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरऊँ। तोहि देखत कौतुक अस करऊँ॥

तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
तुव जुवतीन्ह समेत सठ जनक सुतहि लेइ जाउँ॥

जौं अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे कछु नहिं मनुसाई॥
कौल काम बस कृपिन बिमूढा। अति दरिद्र अजसी अति बूढा॥
सदा रोग बस संतत क्रोधी। विष्णु बिमुख स्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥
अस बिचारि खल बधेउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा। अधम दसन दसि मींजत हाथा॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बडि कहसी॥
कटु जल्पसि जड कपि बल जाके। बल प्रताप बुधि तेज न ताके॥

अगुन अमान बिचारि तेहि दीन्ह पिता बन बास।
सो दुख अरु जुबतीबिरह पुनि निसि दिन मम त्रास॥
जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि ऐसेहु मनुज अनेक।
खाहिं निसाचर दिवस निसि बूढ समुझि तजि टेक॥

जब तेहि कीन्ह राम कै निन्दा। क्रोधवन्त अति भयउ कपिन्दा॥
हरि हर निन्दा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥

झटझटान कपि कुंजर भारी। दुहुँ भुज दण्ड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भागि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत संभारि उठा दसकन्धर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर॥
कछु तेहि लेइ निज सिरन्हि सँवारे। कछु अङ्गद प्रभु पास पबारे॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये॥
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकन्धर केरे। आवत बालि तनय के प्रेरे॥

ताकि पवनसुत कर गहेउ आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिन कर सरिस प्रकास॥
उहां सकोप दसानन सब सन कहत रिसाय।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनु अङ्गद मुसकाइ॥

एहि विधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु॥
मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती॥
रे तिय चोर कुमारगगामी। खल मलरासि मन्दमति कामी॥
संनिपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा॥
याको फल पावहुगे आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे॥
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥

गिरिहहिं रसना संसय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥

सो नर क्यों दसकंध बालि बधेउ जेहि एक सर ।
बीसहु लोचन अन्ध धिग तव जनम कुजाति जड ॥
तब सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर ।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटुजल्पक निसिचर अधम ॥

मैं तब दसन तोरिबे लायक । आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिसि होति दसउँ मुख तोरउँ । लंका गहि समुद्र महँ बोरउँ ॥
गूलन फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जासु असङ्का ॥
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ सीख कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भयसि लबारा ॥
सांचेहुँ मैं लबार भुजबीहा । जौं न उपारउँ तव दस जीहा ॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा । सभा मांझ पन करि पद रोपा ॥
जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं राम सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥
इंद्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती । टरइ न कीस चरन एहि भांती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥

कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरखाइ ।

झपटहिं टरइ न कपि चरन पुनि बैठहि सिर नाइ ॥
भूमि न छाडत कपि चरन देखत रिपुमद भाग ।
कोटि बिघ्न तें संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥
कपि बल देखि सकल हिय हारे । उठा आपु कपि के परचारे ॥
गहत चरन कह बालि कुमारा । मम पद गहे न तोर उबारा ॥
गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अति सकुचाई ॥
भयउ तेज हत श्री सब गई । मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ॥
सिंहासन बैठेउ सिर नाई । मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिसरामा ॥
उमा राम की भृकुटि बिलासा । होइ विस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन तें कुलिस कुलिस तृन करई । तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना । मान न तासु काल नियराना ॥
रिपु मद मथि प्रभु सुजस सुनायो । यह कहि चलेउ बालि नृप जायो ॥
हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करउँ बडाई ॥

सूक्तिसुमन

राम चरण अवलम्ब बिनु परमारथ की आस ।
चाहत बारिद बुन्द गहि तुलसी उडन अकास ।।
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर ।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ।।
जहां राम तहं काम नहिं जहां काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं रवि रजनी इक ठाम ।।
तुलसी कहत बिचारि गुरु राम सरिस नहिं आन ।
जासु कृपा सुचि होत रुचि बिसद बिबेक अमान ।।
बरु मराल मानस तजै चन्द सीत रवि घाम ।
मोह मदादिक कै तजै तुलसी तजै न राम ।।

आसन दृढ आहार दृढ सुमति ज्ञान दृढ होय।
तुलसी बिना उपासना बिनु दुलहे की जोय॥
स्वामी होनो सहज है दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को लागी चरन कपास॥
हित सन हित रति राम सन रिपु सन बैर बिहाय।
उदासीन संसार सन तुलसी सहज सुभाय॥
तुलसी राम कृपालु तें कहि सुनाउ गुन दोस।
होय दूबरी दीनता परम पीन सन्तोस॥
सब संगी बाधक भए साधक भए न कोय।
तुलसी राम कृपालु तें भली होय सो होय॥
तुलसी मिटइ न कल्पना गए कल्पतरु छांह।
जौं लगि द्रवइ न करि कृपा जनक सुता को नाह॥
लगन मुहूरत जोग बल तुलसी गनत न काहि।
राम भए जेहि दाहिने सबै दाहिने ताहि॥
डोलत बिपुल बिहङ्ग बन पियत पोखरिन बारि।
सुजस धवल चातक नवल तोर भुवन दस चारि॥
मुख मीठे मानस मलिन कोकिल मोर चकोर।
सुजस सलिल चातक बलित रहेउ भुवन भरि तोर॥
मांगत डोलत है नहीं तजि घर अनत न जात।
तुलसी चातक भगत की उपमा देत लजात॥

ह्वै अधीन जांचै नहीं सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी मांगनहिं को बारिद बिनु देइ ॥
उपल बरखि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितब कि चातक जलद तजि कबहुँ आनकी ओर ॥
बरखि परुख पाहन जलद पच्छ करै टुक टूक।
तुलसी तदपि न चाहिए चतुर चातकहिं चूक ॥
चरग चंगु गत चातकहिं नेम प्रेम की पीर।
तुलसी परबस हाड़ पर परि है पूहुमी नीर ॥
एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ बर चातक तुलसीदास ॥
तुलसी राम सनेह करु त्याग सकल उपचारु।
जैसे घटत न अङ्क नव नव के लिखत पहारु ॥
तुलसी संत सुअंबु तरु फूलि फलहिं पर हेत।
इत ते ये पाहन हनत उत ते वे फल देत ॥
गो धन गज धन बाजि धन और रतन धन खान।
जब आवत संतोष मन सब धन धूरि समान ॥
तौ लगि योगी जगत गुरू जौ लगि रहत निरास।
जब आसा मन में जगी जग गुरु योगी दास ॥
दुर्जन दरपन सम सदा करि देखो हिय गौर।
सनमुख की गति और है बिमुख भये पर और ॥

घर कीन्हे घर होत है घर छोड़े घर जाय।
तुलसी घर बन बीच ही रहहु प्रेम पुर छाय ॥
असन बसन सुत नारि सुख पापिहु के घर होय।
सन्त समागम राम धन तुलसी दुरलभ दोय ॥
राम कामना हीन पुनि सकल कामदातार।
याही तें परमातमा अव्यय अमल उदार ॥
जो करता है करम को सो भोगत नहिं आन।
बोअनहार लुनिहै सोई देनी लहइ निदान ॥
जग तें रहु छत्तीस ह्वै राम चरन छव तीन।
तुलसी देखु बिचारि हिय है यह मतो प्रवीन ॥
आदि म है अंतहु म है मध्य रहै तेहि जान।
अन जाने जड जीव सब समुझै संत सुजान ॥
आदि दहै मध्ये रहै अंत दहै सो बात।
राम बिमुख के हेत है राम भजन तें जात ॥
अपने खोदे कूप महं गिरे जथा दुख होइ।
तुलसी सुखप्रद समुझि हिय रचत जगत सब कोइ ॥
सोई सेमर सोइ सुआ सेवत पाइ बसन्त।
तुलसी महिमा मोह की सुनत सराहत सन्त ॥
बिना बीज तरु एक भव साखा दल फल फूल।
को बरनै अतिसय अमित सब बिधि अकल अतूल ॥

को नहिं सेवत आइ भव को न सेइ पछिताय ।
तुलसी बादहिं पचत है आपुहिं आप नसाय ॥
कीर सरिस बानी पढत चाखन चाहत खांड ।
मन राखत बैराग महँ घर महँ राखत रांड ॥
राम चरन परचै नहीं बिनु साधुन पद नेह ।
मूड़ मुडाए बादही भांड भए तजि गेह ॥
करम मिटाए मिटत नहीं तुलसी किये बिचार ।
करतब ही को फेर है या बिधि मार अमार ॥
एक किये है दूसरे बहुरि तीसरो अङ्ग ।
तुलसी कैसहु ना मिटै अतिसय करम तरंग ॥
तुलसी जो कीरति चहहिं पर कीरति को खोइ ।
तिनके मुंह मसि लागिहै मुयै न मिटिहै धोइ ॥
नीच चंग सम जानिये सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि देत महि गिरि परत खैंचत चढ़त अकास ॥
राम नाम मनि दीप धरु जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहसि उजियार ॥
सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आप ।
विद्यमान रिपु पाइ रन कायर करहिं प्रलाप ॥
तौ लगि हम तैं सब बड़ो जौ लगि है कछु चाह ।
चाह रहित कह को अधिक पाय परमपद थाह ॥

तुलसी काया खेत है मनसा भये किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं बुवै सो लुनै निदान॥
ब्राह्मन बर बिद्या बिनय सुरुति बिवेक निधान।
पथरति अनय अतीत मति सहित दया स्रुति मान॥
बिनय छत्र सिर जासु के प्रति पद पर उपकार।
तुलसी सो छत्री सही रहित सकल व्यभिचार॥
बैस्य बिनय मगु पगु धरै हरै कटुक बर बैन।
सदय सदा सुचि रुचि सरल ताहि अचल सुख ऐन॥
सूद्र छुद्र पद परिहरै हृदय बिप्र पद मान।
तुलसी मन समता सुमति सकल जीव सम जान॥
सुनत कोटि कोटिन कहत कौड़ी हाथ न एक।
देखत सकल पुरान स्रुति तापर रहित बिबेक॥
चाह किये दुखिया सकल ब्रह्मादिक सब कोइ।
निहचलता तुलसी कठिन राम कृपा बस होइ॥
सब बिधि पूरन धाम बर राम अपर नहि आन।
जाके कृपा कटाच्छ तें होत हिये दृढ ग्यान॥
सो स्वामी सो बर सखा सो बर सुखदातार।
तात मात आपदहरन सो असमय आधार॥
तुलसी संतन तैं सुने सन्तत यहै बिचार।
तन धन चंचल अचल जग जुग जुग पर उपकार॥

होहिं बड़े लघु समय सह तौ लघु सकहिं न काढि।
चन्द दूबरौ कुबरौ तऊ नखत तें बाढ़ि॥
दीरघ रोगी दारिदी कटुबच लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तऊ तुरत त्यागिबे जोग॥
बिद्या बिनय बिबेकरति रीति जासु उर होइ।
राम परायन सो सदा आपद ताहि न कोइ॥
जो मूरख उपदेस के होते जोग जहान।
दुरजोधन कहँ बोधि किन आए स्याम सुजान॥
रीझ आपनी बूझ पर खीझ बिचार बिहीन।
ते उपदेस न मानहीं मोह महोदधि मीन॥
तुलसी तीनि प्रकार तें हित अनहित पहिचान।
परबस परे परोस बसि परे मामला जान॥
जो मधु दीन्हें तें मरे माहुर देउ न ताउ।
जग जिति हारे परसुधर हारि जिते रघुराउ॥
रोस न रसना खोलिए बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर परिनामहित बोलिय बचन विचारि॥
तुलसी मीठी अमिय तें मांगी मिलै जो मीच।
सुधा सुधाकर समय बिन कालकूट तें नीच॥
दंभ सहित कलि धरम सब छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब रुचि अनुहरत अचार॥

का भाखा का संस्कृत भाव चाहिए सांच।
काम जो आवै कामरी का लै करिय कमाच॥
रैन को भूषन इन्दु है दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन भक्ति है भक्ति को भूषन ग्यान॥
ग्यान को भूषन ध्यान है ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांतिपद तुलसी अमल अदाग॥
तुलसी मिटै न मोहतम किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं बिनु रवि-कुल-रवि राम॥
सोइ ग्यानी सोई गुनी जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई राग द्वेष की हानि॥

❀ ❀ ❀

सरलता में अनुराग

वन-यात्रा

(१)

पुर ते निकसी रघुबीर बधू,
धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकी भरि भाल कनी जल की,
पुट सूखि गये मधुराधर वै ॥
फिरि बूझत है 'चलनो अब केतिक,
पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की,
अखियां अति चारु चली जल च्वै ॥

(२)

"जल को गएं लखन हैं लरिका,
परिखौ पिय ! छांह घरीक ह्वै ठाढे ।
पोंछि पसेउ बयारि करौं,
अरु पांय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े ॥"
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानिके,
बैठि विलंब लौं कंटक काढे ।
जानकी नाह को नेह लख्यो,
पुलको तनु बारि बिलोचन बाढे ॥

हिन्दीविलास

द्वितीय तरंग

कविर-रघुराजसिंह

(कबीर)

वैराग्य में अनुराग

मन लागो मेरो यार फकीरी में ।

जो सुख पायो नाम भजन में,

सो सुख नाहिं अमीरी में ।

भला बुरा सब को सुनि लीजै,

कर गुजरान गरीबी में ।।

प्रेम नगर में रहनि हमारी,

भलि बनि आइ सबूरी में ।

हाथ में कूंडी बगल में सोटा,

चारों दिसा जगीरी में ।।

आखिर यह तन खरक मिलैगा,
कहा फिरत मगरूरी में
कहै कबीर सुनो भाइ साधो,
साहिब मिले सबूरी में ॥

* * *

प्रोत्साहन

सूर संग्राम को देखि भागै नहीं,
देखि भागै सोइ सूर नाहीं।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना,
मँडा घमसान तहँ खेत माहीं।
सील औ सांच संतोष साही भये,
नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहै कबीर कोई जूझि है सूरमा,
कायरां भीड़ तहँ तुरत भाजै॥

❀ ❀ ❀

सेवक और दास का अंग

सेवक सेवा में रहै सेवक कहिये सोय।
कह कबीर सेवा बिना सेवक कबहुँ न होय ॥

सेवक स्वामी एक मति जो मति में मिल जायँ।
चतुराई रीझै नहीं रीझै मन के भाय ॥

द्वार धनी के पड़ि रहै धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी नेवाजई जो दर छांड़ि न जाय ॥

निरबन्धन बँधा रहै बँधा निरबन्ध होय।
करम करै करता नहीं दास कहावै सोय ॥

गुरु समरथ सिर पर खड़े कहा कमी तेहिं दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं भक्ति न छाडैं पास ॥

दास दुखी तो हरि दुखी आदि अन्त तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट ह्वै छिंन में करै निहाल॥
दास धनी याचैं नहीं सेव करैं दिन रात।
कह कबीर ता सेवकहिं काल करै नहिं घात॥
मुक्ति मुक्ति मांगौं नहीं भक्ति दान दे मोहिं।
और कोई याचौं नहीं निसि दिन याचौं तोंहि॥
धरती अम्बर जायँगे बिनसैंगे कैलास।
एकमेक होइ जायँगे तब कहँ रहँगे दास॥
काजर केरी कोठरी ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की पैठि के निकसनहार॥
कवीर गुरु का भावता दूरहि ते दीसन्त।
तन छीना मन अनमना जग ते रूठि फिरन्त॥
राता राता सब कहैं अनराता कहै न कोय।
राता सोही जानिये जानत रक्त न होय॥
सब घट मेरा साइयां सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की जा घट परगट होय॥

❀ ❀ ❀

सूरमा का अंग

सूरा सोई सराहिये लडै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै तऊ न छांडै खेत ॥
सूरा सोइ सराहिये अङ्ग न पहरै लोह।
जूझै सब बन्द खोलि कै छांडै तनका मोह ॥
अब तो जूझै ही बनै मुड़ चाले घर दूर।
सिर साहेब को सौंपते सोच न कीजै सूर ॥
सूरा सीस उतारिया छांडी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया आवत देखा दास ॥
साधु सती औ सूरमा इन पट तर कोउ नाहिं।
अगम पंथ को पग धरैं डिगैं तो ठाहर नाहिं ॥

सिर राखे सिर जात है सिर काटे सिर सोय।
जैसे बराती दीप की कटि उजियारा होय॥
लडने को सब ही चले सस्तर बांधि अनेक।
साहेब आगै आपुने जूझेगा कोउ एक॥
सूरा के मैदान में कायर फँसा आय।
ना भाजै ना लडि सकै मनहीं मन पछिताय॥
रनहिं धँसा जो ऊबरा आगे गिरह निवास।
धरै बधावा बाजिया और न दूजी आस॥
ऊँचा तरवर गगन को फल निरमल अति दूर।
अनेक स्याने पचि गये पंथहि मूए झूर॥
दूर भया तो क्या भया सतगुरु मेला सोय।
सिर सौंपे उन चरन में कारज सिद्धी होय॥
खोजी को डर बहुत है पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जौ तन गिरै सो तन साहेब जोग॥
अगिनि आंच सहना सुगम सुगम खडग की धार।
नेह निभावन एक रस महा कठिन ब्यौहार॥
कोने परान छूटिहौ सुनु रे जीव! अबूझ।
कबीर मंड मैदान में करि इन्द्रिन सों जूझ॥
सूरा नाम धराय कै अब का डरपै बीर।
मँडि रहना मैदान में सनमुख सहना तीर॥

भागे भली न होयगी कहां धरोगे पांव।
सिर सौंपो सीधे लड़ो काहे करै कुदांव॥
सूर सिलाह न पहिरई जब रन बाजा तूर।
माथा काटै धड लडै तब जानी जे सूर॥
नाम रसायन प्रेम रस पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है मांगै सीस कलाल॥

चेतावनी का अंग

कुसल कुसल ही पूँछते जग में रहा न कोय।
जरा मुई ना भय मुआ कुसल कहां से होय॥
पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यौं तारा परभात॥
रात गँवाई सोय करि दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै जब चिड़िया चुग गई खेत॥
काल्ह करै सो आज कर आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी बहुरि करैगा कब॥

जिनके नौबत बाजती मंगल बँधते बार।
एकै सतगुरु नाम बिन गये जनम सब हार॥
ऊजड़ खेड़े ठीकरी गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया लङ्का का सरदार॥
पांच तत्त्व का पूतरा मानुस धरिया नाम।
दिना चार के कारनै फिरि फिरि रोके ठाम॥
पक्की खेती देख कै गर्वै कहा किसान।
अजहूँ झोला बहुत है घर आवै तब जान॥
जेहि घट प्रेम न प्रीति रस पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर पसु संसार में उपजि खये बेकाम॥
ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्यवहार में झूँठे रङ्ग न भूल॥
पांच पहर धन्धे गया तीन पहर रहे सोय।
एकौ घड़ी न हरि भजे मुक्ति कहां ते होय॥
सपने सोया मानवा खोल देखि जो नैन।
जीव परा बहु लूट में न कछु लेन न देन॥
घर रखवारा बाहरा चिड़िया खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै चेत सकै तो चेत॥
माटी कहै कुम्हार तू क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होयगा मैं रूँदूँगी तोहि॥

जिन गुरु की चोरी करी गये नाम गुन भूल।
ते बिधना गादुर रचे रहे अरध मुख भूल॥
कहा कियो इन आइके कहा करैंगे जाइ।
इतके भये न उत्तके चाले मूल गँवाइ॥
जगतहि में हम रांचिया झूठे कुल की लाज।
तन छीजै कुल विनसिहै चढे न नाम जहाज॥
मोर तोर की जेवरी बटि बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै जाके नाम अधार॥
जिन जाना निज गेह को सो क्यों जोडै मित्त।
जैसे पर घर पाहुना रहै उठाये चित्त॥
जा जानहु जिव आपना करहु जीव को सार।
जियरा ऐसा पाहुना मिलै न दूजी बार॥
बनजारा का बैल ज्यौं टांडा उतर्यो आय।
एकन कों दूना भया इक चला मूल गँवाय॥
या दुनिया में आइकै छांडि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले उठी जात है पैंठ॥
तन सराय मन पाहरू मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं सब देखा ठोंक बजाय॥
अपने पहरे जागिये ना पडि रहिये सोय।
ना जानौ छिन एक मैं किस का पहरा होय॥

कुल खोये कुल ऊबरै कुल राखे कुल जाय।
नाम अकुल को भेंटिया सब कुल गया बिलाय॥
कबीर बेडा जरजरा फूटे छेद हज़ार।
हरुए हरुए सरि गये बूड़े जिन सर भार॥
मैं भँवरा तोहि बरजिया बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से तड़पि तडपि जिय देय॥
बाडी के बिच भँवर था कलियां लेता बास।
सो तो भँवरा उडि गया तजि बाडी की आस॥
भय बिनु भाव न ऊपजै भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया मिटी सकल रस रीति॥
यह जग कोठी काठ की चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ साधू उबरे भागि॥
यहि बिरिया तो फिर नहीं मन में देख बिचार।
आया लाभ के कारनै जनम जुआ मत हार॥

❀ ❀ ❀

शब्द का अंग

सीखै सुनै बिचारि लै ताहि सबद सुख देय ।
बिना समझ सब्दै गहै कछू न लाहा लेय ॥
सब्दहि मारे मरि गये सब्दहि तजिया राज ।
जिन जिन सब्द पिछानिया सरिया तिनका काज ॥
सब्द हमार हम सब्द के सब्द ब्रह्म का कूप ।
जो चाहै दीदार को परख सब्द का रूप ॥
काल फिरै सिर ऊपरै जीवहिं नजर न आइ ।
कह कबीर गुरु सब्द गहि जम से जीव बचाइ ॥
सब्द बराबर धन नहीं जो कोई जानै मोल ।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहिं मोल न तोल ॥

सीतल सब्द उचारिये अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में सत्रू भी तुझ माहिं॥
वह मोती मत जानियो पुहै पोत के साथ।
यह तो मोती सब्द का बेधि रहा सब गात॥
जंत्र मंत्र सब झूँठ हैं मत भरमो जग कोय।
सार सब्द जाने बिना कागा हंस न होय॥
सत्त सब्द निज जानिके जिन कीन्हा परतीत।
काग कुमति तजि हंस ह्वै चले सो भव जल जीति॥

❀ ❀ ❀

सांच का अंग

सांच बराबर तप नहीं झूँठ बराबर पाप।
जाके हिरदै सांच है ता हिरदै गुरु आप ॥
सांचे स्राप न लागई सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिलै सांचे माहिं समाय ॥
जो तू सांचा बानिया सांची हाट लगाय।
अन्दर झाड़ू देइ कै कूड़ा दूरि बहाय ॥
कंचन केवल हरि भजन दूजा कांच कथीर।
झूँठ जाल जंजाल तजि पकड़ा सांच कबीर ॥
साधू ऐसा चाहिये सांची कहै बनाय।
कै टूटे कै फिरि जुरै कहे बिन भरम न जाय ॥

झूँठ बात नहिं बोलिये जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा सांच गहु आवागमन नसाय॥
सांच हुआ तो क्या हुआ जो नाम न सांचा जान।
सांचा ह्वै सांचे मिलै तब सांचे माहिं समान॥

विचार का अंग

पानी केरा पूतला राखा पवन सँचार।
नाना बानी बोलता जोति धरी करतार॥
एक सब्द में सब कहा सब ही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुन नाम को तजिये बिषय बिकार॥
फूटी आंखि बिबेक की लखै न संत असंत।
जाके संग दस बीस हैं ताको नाम महंत॥
साधू मेरे सब बड़े अपनी अपनी ठौर।
सब्द बिबेकी पारखी सो माथे को मौर॥

कहै कबीर पुकारि कै कोइ संत बिबेकी होय।
जामें सब्द बिबेक है छत्र धनी है सोय॥
जीव जंतु जलहर बसै गये बिबेक जो भूल।
जल के जलचर यों कहैं हम उडगन सम तूल॥

निष्कर्ष

रहना नहिं देस बिराना है।

यह संसार कागद की पुड़िया,
बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी,
उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ औ झांकर,
आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
सत गुरु नाम ठिकाना है॥

घूँघट का पट खोल रे तोहें पीय मिलेंगे

घट घट में वह साईं रमता,
कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै,
झूठा पचरंग चोल रे॥
सुन्न महल में दियना बारि ले,
आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगत सों रंग महल में,
पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर अनन्द भयो है,
बाजत अनहद ढोल रे॥

नाम अमल उतरै ना भाई

और अमल छिन छिन चढ़ि उतरै,
नाम अमल दिन बढ़ै सवाई।
देखत चढ़ै सुनत हिय लागै,
सुरत किये तन देत घुमाई॥
पियत पियाला भए मतवाला,
पायो नाम मिटी दुचिताई।
जो जन नाम अमल रस चाखा,
तर गई गनिका सदन कसाई॥

कह कबीर गूँगे गुड खाया,
बिन रसना का करै बड़ाई ॥

हिरदै भीतर आरसी मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तब ही देखसी दिल की दुविधा जाय ॥
नैनों अन्तर आव तू नैन झांपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखों और को ना तोहि देखन देवँ॥
निराकार की आरसी साधौ हीकी देह।
लखा जो चाहे अलख को इनहीं में लखि लेह ॥
रात गँवाई सोय कर दिवस गँवाया खाय।
हीरा जनम अमोल था कौड़ी बदले जाय ॥
मैं भंवरा तोहि बरजिया बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से तड़पि तड़पि जिय देय ॥
भँवर बिलम्बे बाग में बहु फूलन की आस।
जीव बिलम्बे विषय में अन्तहु चले निरास ॥
सुपने में साईं मिले सोवत लिया जगाय।
आंखि न खोलूँ डरपता मत सुपना ह्वै जाय ॥
तरुवर तासु बिलम्बिये बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन बन पंछी केल करन्त ॥

❀ ❀ ❀

(सूरदास)

बाल लीला

घुटुरुन चलत श्याम मनि आंगन,
मात पिता दोउ देखत री।
कबहुँक किलकिलात मुख हेरत,
कबहुँ जननी मुख पेखत री॥
लटकन लटकत ललित भाल पर,
काजर बिन्दु भ्रूव ऊपर री।
यह शोभा नयननि देखे जो,

नहिं उपमा तिहुँ भू पर री ॥
कबहुँक दौरि घुटुरुवनि लटकत,
गिरत उठत फिरि धावति री।
इत ते नन्द बुलाय लेत हैं,
उत ते जननि बुलावति री ॥
दम्पति होड़ करत आपुस में,
श्याम खेलौना कीन्हों री।
सूरदास प्रभु ब्रह्म सनातन,
सुत हित करि दोउ लीन्हों री ॥

कहां लगि बरणों सुन्दरताइ।
खेलत कुँवर कनक आंगन में,
नैन निरखि छवि छाइ ॥
कुलहि लसत शिर श्याम सुभग अति,
बहु विधि रंग बनाइ।
मांनहु नव घन ऊपर राजत,
मघवा धनुष चढ़ाइ ॥
अति सुदेश मृदु हरत चिकुर,
मनमोहन मुख बगराइ।
मांनहु मंजुल प्रगट कंज पर,

अलि अवली फिरि आइ ॥
नील श्वेत पर पीत लाल मणि,
लटकत भाल हराइ ।
शनि गुरु असुर देव गुरु मिलि,
मानौं भौम सहित समुदाइ ॥
दूध दन्त द्युति कहि न जाय अति,
अद्भुत एक उपमाइ ।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत,
मानों घन में बिज्जु छटाइ ॥
खण्डित बचन देत पूरन सुख,
अलप जलप जल पाइ ।
घुटुरुन चलत रेणु तनु मण्डित,
सूरदास बलि जाइ ॥

गहे अँगुरियां सुवन की,
नन्द चलन सिखावत ॥
अरबराय गिरि परत हैं,
कर टेकि उठावत ॥
बार बार बकि श्याम सों,
कछु बोल बुलावत ।

दुहुँयां द्वै दँतुली भई,
अति मुख छबि पावत ॥
कबहुँ कान्ह कर छाड़ि नन्द,
पग द्वैक रिंगावत।
कबहुंक उलटि चले धाम को,
घुटुरुन करि धावत ॥
सूर श्याम मुख देखि महरि,
मन हरष बढ़ावत ॥

मैया कब बढ़िहै मेरी चोटी।
किती बेर मोहि दूध पिवत भई,
यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों,
ह्वै है लांबी मोटी।
काढ़त गुहत न्हवावत जै हैं,
नागिनि सि भुंइ लोटी ॥
काचो दूध पिवावत मोहन,
देती माखन रोटी।
सूर मैया भाहि रिस रिझ्यो,
हरि हलधर की जोटी ॥

खेलनि दूरि जात कत कान्हा।
आजु सुन्यों मैं हाऊ आयो,
तुम नहिं जानत नान्हा॥
यक लरिका अबहीं भजि आयो,
रोवत देख्यो ताहि।
कान तोरि वह लेत सबनि को,
लरिका जानत जाहि॥
चलो न बेगि सबेरे जैये,
भाजि आपने धाम।
सूर श्याम यह बात सुनत ही,
बोलि लिये बलराम॥

दूरि खेलन जनि जाउ ललन,
मेरे हाऊ आये हैं।
तब हँसि बोले कान्ह रि मैया,
इनको किन्हें पठाये हैं॥
यमुना के तट धेनु चरावत,
जहां सघन बन झाऊ।
पैठि पताल व्याल गहि नाथ्यो,
तहां न देखे हाऊ॥

अब डरपत सुनि सुनि ये बातें,
कहत हँसत बलदाऊ।
सप्त रसातल शेषासन रहि,
तब की सुरत भुलाऊ॥
चार बेद लै गयो शंख सुर,
जल में रहेउ लुकाऊ।
मीन रूप धरिके जब मारेउ,
तबहिं रहे कहँ हाऊ॥
मथि समुद्र सुर असुरन के हित,
मन्दर जलहि खसाऊ।
कमठरूप धरि धरनि पीठ पर,
सुख पायो सुरराऊ॥
जब हरणाक्ष युद्ध अभिलाषे,
मन में अति गरबाऊ।
धरि बाराह रूप रिपु मारेउ,
लै क्षिति दन्त अगाऊ॥
बिकट रूप अवतार धरेउ जब,
सो प्रहलाद बताऊ।
धरि नृसिंह जब असुर बिदारेउ,
तहां न देख्यो हाऊ॥

बामन रूप धरेउ बलि छलि कर,
तीन परग बसुधा ऊ।
श्रम जल ब्रह्म कमण्डल राख्यो,
दरशि चरण परसाऊ॥
मारेउ मुनि बिनहीं अपराधहिं,
कामधेनु लै आऊ।
इकइस बार करि निक्षत्रि छिति,
तहां न देख्यो हाऊ॥
रामरूप रावण जब मारेउ,
दश शिर बीस भुजाऊ।
लंक जराय क्षार जब कीनों,
तहां रहे कहँ हाऊ॥
माटी के मिस बदन बिकास्यो,
जब जननी डरपाऊ।
मुख भीतर भय लोक देखाये,
तबहुँ प्रतीति न आऊ॥
नृपति भीम सों युद्ध परसपर,
तहँ वह भाव बताऊ।
तुरत चीर दुइ टूक कियो धरि,
ऐसे त्रिभुवन राऊ॥

भक्त हेत अवतार धरेउ सब,
असुरनि मारि बहाऊ।
सूरदास प्रभु की यह लीला,
निगम नेति कहि गाऊ॥

❀ ❀ ❀

गोवर्द्धन लीला

प्रथमहिं देउँ गिरिहि बहाय।
बज्रघातनि करौं चूरन,
देउं धरनि विलाय॥
मेरि इन महिमा न जानी,
प्रगट देउं दिखाय।
जल बरषि ब्रज धोइ डारौं,
लोग देउं बहाय॥
खात खेलत रहे नीके,
करि उपाधि बनाय।
बरष दिन मोहि देत पूजा,

दई सोउ मिटाय ।।
कोप करि सुरराज लीन्हे,
प्रबल मेघ बुलाय ।
रिस सहित सुरपति कहत पुनि,
परौ ब्रज पर धाय ।।
सुनहु सूर कहत है मघवा,
वेगि परौ भहराय ।।

बरषि बरषि सब हारे बादर
ब्रज के लोगनि धोय बहावहु,
इन्द्र हमहिं करि आदर ।।
कहा जाय केहैं प्रभु आगे,
करि हैं बहुत निरादर ।
हम वर्षत वर्षत जल सोखत,
ब्रजबासी सब सादर ।।
पुनि रिसि करत प्रलय जल बर्षत,
कहत भये सब कादर ।
सूर गाय गोसुत सब राख्यो,
गिरिवरधर ब्रज नागर ।।

❀ ❀ ❀

वृन्दावन प्रवेश शोभा

मैया हौं न चरैहौं गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों,
मेरो पांइ पिराय ।।
जौ न पत्याहि पूछि बलदाऊ,
अपनी सौंह दिवाइ।
यह सुनि सुनि यशुमति,
ग्वालन को गारी देत रिसाय ।।
मैं पठवत अपने लरिका को,
आवै मन बहराइ।
सूर श्याम मेरो अति बालक,
मारत ताहि रिंगाइ ।।

❀ ❀ ❀

मथुरा गमन लीला

यशुदा बार बार यह भाखै।
है कोउ ब्रज में हितू हमारो,
चलत गोपालै राखै ॥
कहा काज मेरे छगन मगन को,
नृप मधुपुरि बुलाये।
सुफलक सुत मेरे प्राण हरण को,
कालरूप ह्वै आये ॥
वरु यह गोधन कंस लेइ सब,
मोहि बन्दि ले मेलै।

इतनो मांगति कमल नैन मेरी,
अंखियन आगे खेलै ॥
को कर कमल मथानी गहि है,
को दधि माखन खैहै ।
बहुरेउ इन्द्र बर्षि है ब्रज पर,
कौन मेरु कर लैहै ॥
बासर रैन बिलोके जीऊँ,
संग लागि हिलराऊं ।
हरि बिछुरत असु रहैं कर्म बश,
तौ केहि कण्ठ लगाऊं ॥
टेरि टेरि धर परति यशोदा,
अधर बदन बिलखानी ।
सूर सु दशा कहां लगि बरणौं,
दुखित नन्द की रानी ॥

तब न बिचारी री यह बात ।
चलत न फेंट गह्यो मोहन की,
अब कह री पछितात ॥
निरखि निरखि मुख रही मौन ह्वै,
चक्रित भई बिलखात ।

जबै रथ भयो दृष्टि अगोचर,
लोचन अति अकुलात ॥
सबै अजान भईं बहि औसर,
अति ढिग गहि सुत मात।
सूरदास स्वामी के बिछुरे,
कौड़ी भरि न बिकात ॥

नीके रहिये यशोदा मैया।
आवेंगे दिन चार पांच में,
हम हलधर दोउ भैया ॥
बंशी बेणु विषान देखियो,
और अबेर सबेरो।
लै जिनि जाय चोराय राधिका,
कछू खिलौना मेरो ॥
जा दिन ते हम तुम ते बिछुरे,
कोहु न कहै कन्हैया।
प्रात समय उठि कियो न कलेऊ,
सांझि पियो नहिं धैया ॥
कहा कहौं कछु कहत न आवे,
यशुमति जेतो दुख पायो।

अब सुनियत बसुदेव देवकी,
कहत हमारो जायो ॥
कहियो जाय नन्द बाबा सों,
नन्द निठुर मन कीन्हो।
सूरश्याम पहुँचाय मधुपुरी,
बहुरि सन्देश न लीन्हो ॥

मेरे कान्ह कमलदललोचन।
अब की बेर बहुरि ब्रज आवहु,
कहा लगे जिय सोचन ॥
यही लालसा बहुत मेरे जिय,
बैठे देखत रहि हौं।
गायन चरावन जान कुंवर को,
कबहूँ भूलि न कहि हौं ॥
करत अठान न बरज्यों कबहूँ,
अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नयन भरि देखौं,
हीरा की सी जोरी ॥
एक बेर मिलि जाउ इहां लौं,
अनत कहँ के ऊतर।

चारिहु दिवस आइ सुख दीजै,
सूर पहुनई सूतर ॥

अब नन्द गइयां लेहु सम्हार।
हम तो तुम्हरे आन परगट,
गौ चराइ दिन चार ॥
दूध दधि सब चोर खायो,
तुम जो कियो प्रतिपार।
सूर के प्रभु चले ब्रज तजि,
कपट कागज़ फार ॥

पाछेहि चितवत मेरे लोचन,
आगे परत न पाइ।
मन हर लियो माधुरी मूरति,
कहा करौं ब्रज जाइ ॥
पवन न भई पताका अम्बर,
भई न रथ को अङ्ग।
रेणु न भई चरण लपटाती,
जाति वहां लौं सङ्ग।
केहि बिधि कर कैसे सजनि करि,

कब जु मिलैं गोपाल।
सूरदास प्रभु पठै मधुपुरी,
मुरछि परीं ब्रज बाल॥

ऊधो हुतो जननि सों मिलियो,
अरु कुशलात कहोगे।
बाबा नन्दहिं पालागन कहि,
पुनि पुनि चरण गहोगे॥
जा दिन ते मधुबन हम आये,
सुधि नाहिं तुम लीन्हीं।
दै दै सौंह करोगे हितकरि,
कहा निठुरई कीन्हीं॥
यह कह्यो बलराम श्याम अब,
आवेंगे दोऊ भाई।
सूर कर्म की रेख मिटे नहिं,
यहै कह्यौ यदुराई॥

गोपालहि बारे ही की टेव।
जानति नहीं कहां ते सीखे,
चोरी की छल छेव॥

तब कछु दूध दह्यो लै खाते,
करि रहतीं हौं कानि।
कैसे सही परत है मो पै,
मन माणिक की हानि॥

ऊधौ नन्दनँदन सो कहियो,
राजनीति समुझाइ।
राजहु भये तजत नहिं लोभहिं,
गुप्त नहीं यदुराइ॥
बुद्धि बिबेक अरु वचन चातुरी,
पहिले लई चुराई।
सूरदास प्रभु के गुन ऐसे,
कासों कहिये जाई॥

फिरि फिरि कहा सिखावत मौन।
बचन दुसह लागत अलि तेरे,
ज्यो पजरे पर लौन॥
सींगी मुद्रा भस्म अधारी,
अरु आराधन पौन।
हम अबला अहीर शठ मधुकर,

धरि जानहि कहि कौन ॥
यह मत जाइ तिनहि तुम सिखवहु,
जिनहीं यह मत सोहत ।
सूर आज लौं सुनी न देखी,
पोत पूतरी पोहत ॥

ऊधौ जी हमहि न योग सिखैये ।
जेहि उपदेस मिलैं हरि हम को,
सो व्रत नेम बतैये ॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने,
निर्गुण सुनत दुख पैये ।
जिहि सिर केश कुसुम भरि गूँदे,
तेहि कैसे भसम चढ़ैये ॥
जानि जानि सब मगन भये हैं,
आपुन आपु लखैये ।
सूरदास प्रभु सुनहु न वा बिधि,
बहुरि किया ब्रज ऐये ॥

❀ ❀ ❀

विनय पात्रिका

काहू के कुल नाहिं बिचारत ।

अविगति की गति कहौं कौन सो पतित सबन को तारत ।

कौन जाति को पांति बिदुर की जिनकों प्रभु व्योहारत ।।

भोजन करत तुष्टि पर उनके राजमान पद टारत ।

ओछे जन्म कर्म के ओछे ओछे ही बोलावत ।।

अनत सहाय सूर के प्रभु की भक्त हेतु पुनि आवत ।

गोबिन्द प्रीति सबन की मानत ।

जो जेहि भाय करै जन सेवा अन्तर की गति जानत ।।

बेर चाखि कटु तजि लै मीठे भिलडी दीने जाय ।

जूठन की कछु शंक न कीन्ही भक्त किये सदभाय ॥
सन्तत भक्त मीत हितकारी श्याम बिदुर के आये ।
प्रेमहिं बिकल बिदुर अर्पित प्रभु कदली छिलरा खाये ॥
कौरव काज चले ऋषि आपुन शाक के पत्र अघाये ।
सूरदास करुणा निधान प्रभु युग युग भक्त बढ़ाये ॥

अब हौं नाच्यौं बहुत गोपाल ।

काम क्रोध को परिहरि चोलना कंठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल ।
भ्रम भोये मन भयो पखावज डरप असंगत चाल ॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि के ताल ।
माया को करि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूरि करहु नंद लाल ॥

कृपा अब कीजिये बलि जाउँ ।

नाहिंन मेरे अनत कहूँ अब पद अम्बुज बिन ठांउँ ॥
हौं अशुची अकृती अपराधी सन्मुख होत लजाउँ ।
तुम कृपाल करुणानिधि केशव अधम उधारण नाउँ ॥
काके द्वार जाय हों ठाढ़ो देखत काहि सुहाउँ ।
अशरण शरण बिरद व्यापक तुव हौं कुटिल काम सुभाउँ ॥
कलुषी परम मलीन दुष्ट हौं सेंत्थौं तौ न बिकाउँ ।

सूर पतित पावन पद अम्बुज पारस क्यों परसाउँ ॥

नाथ जू अब के मोहिं उबारो ।

पतितन में बिख्यात पतित हौं पावन नाम तुम्हारो ॥
बड़े पतित नाहिन पासंगहूँ अजामील को हौं जु बिचारो ।
भाजै नरक नाउँ मेरो सुनि भमन दियो हठि तारो ॥
क्षुद्र पतित तुम तारे रमापति अब न करो जिय गारो ।
सूरदास सांचो तुव माने जो होय मम निस्तारो ॥

छांड़ि मन हरि बिमुखन को संग ।

कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुवंग ॥
जाके संग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भंग ।
काम क्रोध मद लोभ मोह में निशि दिन रहत उमंग ॥
कागहिं कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अगरजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
पाहन पतित बाण नहिं भेदत रीतो करत निषंग ।
सूरदास खल काली कामरि चढ़त न दूजो रंग ॥

सबै दिन एक से नहिं जात ।

सुमिरन भगति लेहु करि हरि की जौ लगि तन कुशलात ॥
कबहुँक कमला चपल पाय कै टेढ़ेइ टेढ़े जात ।
कबहुँक मग मग धूरि टटोरत भोजन को बिलखात ॥
बालापन खेलत ही खोयो भक्ति करत अरसात ।

सूरदास स्वामी के सेवत पैहौ परम पद तात ॥

भजहु न मेरो श्याम मुरारी ।
सब संतन के जीवन हैं हरि कमल नयन प्यारो हितकारी ॥
या संसार समुद्र मोह जल तृष्णा तरंग उठति है भारी ।
नाव न पाई सुमिरन हरि को भजन रहित बूडत संसारी ॥
दीनदयाल अधार सबनको परम सुजान अखिल अधिकारी ।
सूरदास कह तुम पांचै जन जन को भांक होत भिखारी ॥

मों सों पतित न और गुसाईं ।
अवगुण मोपै कबहुं न छूटे बहुत पचेउ अब ताईं ॥
जन्म जन्म हौं रहेउ भ्रमित ह्वै कपि गुंजा की नांई ।
ता परसत गयो शीत न कबहूं लै लै निकट तपाई ॥
लुब्ध्यौ जाय कनक कामिनि ज्यों शिशु देखत अलभाई ।
जिह्वा स्वाद मीन लों डारेउ सुझियो नहीं फँदाई ॥
मुदित भयो सपने में जैसे पाये निधिहि पराई ।
जागि परे कछु हाथ न लाग्यो ऐसे सूर प्रभुताई ॥

प्रीतम जानि लेहु मन माहीं ।
अपने सुख को सब जग बांध्यो कोउ काहू को नाहीं ॥
सुख में आय सबै मिलि बैठत रहत चहुँ दिशि घेरे ।
बिपति परी तब सब संग छांड़ै कोउ न आवै नेरे ॥
घर की नारि बहुत हित जासों रहत सदा संग लागी ।

जब इन हंस तजी यह काया प्रेत प्रेत कहि भागी ॥
या बिधि को व्योपार बंन्यो जग तासों नेह लगायो ।
सूरदास भगवन्त भजन बिन नाहक जन्म गँवायो ॥

अब मैं जानी देह बुढ़ानी ।
शीश पांव धरि कह्यो न मानै तन की दशा सिरानी ॥
आन कहत आनै कहि आवत नयन नाक बहै पानी ।
मिटि गइ चमक दमक अङ्ग अङ्ग की गई जु मति हेरानी ॥
नाहिं रही कछु सुधि तन मन की ह्वै है बात बिरानी ।
सूरदास प्रभु अबहिं चेत ले भज ले शारंग पानी ॥

❀ ❀ ❀

(नरोत्तमदास)

सुदामा चरित

लोचनकमल दुखमोचन तिलक भाल,

श्रवणन कुंडल मुकुट धरे माथ हैं।

ओढे पीत बसन गले में बैजयनी माला,

शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥

कहत नरोत्तम सँदीपन गुरु के पास,

गुरु ही कहत हम पढे एक साथ हैं।

द्वारका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय,

द्वारका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥ १ ॥

शिच्छक हैं सगरे जग को तिय,

ताको कहा अब देति है सिच्छा ।

जे तप के परलोक सुधारत,
सम्पति की तिनके नहि इच्छा ॥
मेरे हिये हरि को पद पंकज,
बार हजार ले देख परिच्छा।
औरन को धन चाहिये बावरि,
ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा ॥ ७ ॥
कोदौं समा जुरतौ भरि पेट,
न चाहति हौं दधि दूध मिठौती।
शीत व्यतीत भयो सिसिआतहि,
हौं हठती पै तुम्हें न हठौती ॥
जो जनती न हितू हरि से,
मैं काहे को द्वारका ठेल पठौती।
या घर से कबहूँ न गयो पिय,
टूटौ तवा अरु फूटि कठौती ॥ ३ ॥
छांडि सबै झक तोहि लगी बक,
आठहुँ याम यही ठक ठानी।
जातहिं देहैं लदाय लढा भरि,
लेहौं लदाय यही जिय जानी ॥
पैये अटारि अटा कहँ ते,
जिन को बिधि दीन्हि है टूटी सी छानी।

जो पै दरिद्र ललाट लिख्यो,
तो पै काहू के मेटे न जात अजानी ॥ ४ ॥
फाटे पट टूटी छानि खायो भीख मांगि आनि,
बिना गये बिमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबन्धु दुखी देख के दयालु ह्वै हैं,
दे हैं कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई ॥
द्वारका लौं जात पिय केतौ अलसात तुम,
काहे को लजात भई कौन सी बिचित्रई।
जो पै सब जन्मये दरिद्र ही सताये तो पै,
कौन काज आइ है कृपानिधि की मित्रई ॥ ५ ॥
तैं तो कही नीकी सुन बरात हित हीं की यह,
रीति मित्रई की नित प्रीत सरसाइये।
चित्त के मिले तें वित्त चाहिये परसपर,
मित्र को जे जेंइये तो आपहू जिमाइये ॥
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहां यह रूप जाय कहा सकुचाइये।
दुःख सुख सब दिन काटे ही बनेगो भूल,
बिपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥ ६ ॥
द्वारका जाहु जू द्वारका जाहु जू,
आठहुँ याम यही झक तेरे।

जौं न कहो करिये तौ बडो दुख,
पैहौं कहां अपनी गति हेरे ॥
द्वार के खड़े प्रभु के छडिया तहँ,
भूपति जान न पावत नेरे।
पान सुपारि तौ देखु बिचारि के,
भेंट को चारि न चामर मेरे ॥ ७ ॥
यह सुनि के तब ब्राह्मणी गई परोसिन पास।
सेर पाव चामर लिये आई सहित हुलास ॥
सिद्धि करौ गणपति सुमिरि बांधि दुपटिया खूँट।
चले जाहु तेहि मारगहिं मांगत बाली बूट ॥ ८ ॥
दृष्टि चकाचौंधि गई देखत सुबरनमयी,
एक ते सरस एक द्वारका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ काहे से न करे बात जहां,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं ॥
देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय,
कृपा करि कहो कहां कीन्हे विप्र गौन हैं।
धीरज अधीर के हरण पर पीर के,
बताओ बलबीर के महल यहां कौन हैं ॥ ९ ॥
द्वारपाल चलि तहँ गयो जहां कृष्ण जदुराय।
हाथ जोरि ठाडो भयो बोल्यो सीस नवाय ॥ १० ॥

शीश पगा न झगा तन में,
प्रभु जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी फटी दुपटी,
अरु पांय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खडो द्विज दुर्बल देखि,
रह्यो चकि बसुधा अभिरामा।
दीनदयाल को पूछत नाम,
बतावत आपनो नाम सुदामा॥ ११॥
ऐसे बिहाल बिवायन सों भये,
कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा तुम,
आये इतै न कितै दिन खोये।
देखि सुदामा की दीन दसा,
करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं,
नैनन के जल सों पग धोये॥ १२॥
तन्दुल त्रिय दीने हुते आगे धरियो जाय।
देखि राजसम्पति विभव दै नहिं सकत लजाय॥ १३॥
कछु भाभी हमको दियो सो तुम काहे न देत।
चांपि गांठरी कांख में रहे कहो किहि हेत॥ १४॥

आगे चना गुरु मात दिये ते,
लिये तुम चाबि हमें नहिं दीने।
स्याम कही मुसुकाय सुदामा सों,
चोरि की बानि में हो जु प्रवीने॥
गांठरि कांख में चांपि रहे तुम,
खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौ न तजी तुम,
वैसे ही भाभी के तंदुल कीने॥ १५॥

खोलत सकुचत गांठरी चितवत हरि की ओर।
जीरणपट फट छुटि परे बिखरि गये तेहि ठौर॥ १६॥

कह्यो विस्वकर्मा को हरि तुम जाय करि,
नगर सुदामाजी को रचौ बेग अबही।
रतन जटित धन सुबरणमयी सब,
कोट औ बजार बाग फूलन के तबही॥
कल्प बृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे,
कीजिये अपार दास दासी देव छबही।
इन्द्र औ कुबेर आदि देवबधु अपसरा,
गन्धरब गुणी जहां ठाडे रहैं सब ही॥ १७॥

नित नित सब द्वारावती दिखलाई प्रभु आप।
भरे बाग अनुराग सब जहां न ब्यापहिं ताप॥ १८॥

परम कृपा दिन दिन करी कृपानाथ जदुराय।
मित्र भावना बिस्तरी दूनो आदर भाय॥ १६ ॥
देनो हुतौ सो दे चुके बिप्र न जानी बात।
चलती बेर गोपाल जी कछू न दीनो हाथ॥ २० ॥
गोपुर लौं पहुँचाय के फिरे सकल दरबार।
मित्र बियोगी कृष्ण के नेत्र चली जलधार॥ २१ ॥
बालापन के मित्र हैं कहा देउँ मैं शाप।
जैसो हरि हमको दियो तैसो पइयो आप॥ २२ ॥
और कहा कहिये जहां कंचन ही के धाम।
निपट कठिन हरि को हियो मोको दियो न दाम॥ २३ ॥
इमि सोचत सोचत भकत आये निज पुर तीर।
दृष्टि परी इक बार हीं हय गयन्द की भीर॥ २४ ॥

* * *

(रहीम)

रहीम के दोहे

सर सूखे पंछी उड़ैं औरे सरन समाहिं।
दीन मीन बिन पच्छ के कहु रहीम कहँ जाहिं॥ १॥
धूर धरत निज सीस पर कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पत्नी तरी सो ढूँढत गजराज॥ २॥
दीन सबन को लखत हैं दीनहिं लखै न कोइ।
जो रहीम दीनहि लखै दीन बन्धु सम होइ॥ ३॥
राम न जाते हिरन संग सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कहूँ होत आपने हाथ॥ ४॥

कहु रहीम कैसे बने केरि बेरि को संग ।
वे डोलत रस आपने उन को फाटत अंग ॥ ५ ॥
जो रहीम ओछो बढ़ै तो नित ही इतराइ ।
प्यादे से फरजी भयो टेढो टेढो जाइ ॥ ६ ॥
नैन सलोने अधर मधु कहु रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै लौन पर अरु मीठे पर लौन ॥ ७ ॥
जो रहिमन दीपक दशा किय राखति पट ओट ।
समय परे ते होत है वाही पट की चोट ॥ ८ ॥
रहिमन राज सराहिये शशि सम सुखद जो होइ ।
कहा बापुरो भानु है तप्यौ तरैयन खोइ ॥ ९ ॥
कमला थिर न रहीम कहि यह जानत सब कोइ ।
पुरुष पुरातन की बधू क्यों न चंचला होइ ॥१०॥
जो गरीब सों हित करैं धनि रहीम वे लोग ।
कहा सुदामा बापुरो कृष्ण मिताई जोग ॥११॥
वह रहीम उत्तम प्रकृति का करि सकत कुसंग ।
चंदन बिष ब्यापत नहीं लिपटे रहत भुजंग ॥१२॥
आप न काहू काम के डार पात फल फूल ।
औरन को रोकत फिरैं रहिमन पेड़ बबूल ॥१३॥
यों रहीम सुख होत है बढत देखि निज गोत ।
ज्यौं बडरी अंखियां निरखि आंखिनको सुख होत॥१४॥

शशि सँकोच साहस सलिल मान सनेह रहीम।
बढत बढत बढि जात हैं घटत घटत घट सीम ॥१५॥
यह रहीम निज संग लै जनमत जगत न कोइ।
बैर प्रीति अभ्यास जस होत होत ही होइ ॥१६॥
दुरदिन परे रहीम कहि दुरथल जैयत भागि।
ठाढे हूजत घूर पै जब घर लागत आगि ॥१७॥
प्रीतम छबि नैनन बसी पर छबि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखी पथिक आप फिरि जाय ॥१८॥
कौन बड़ाई जलधि मिली गंग नाम भयो धीम।
किहिकी प्रभुता नहिं घटी पर घर गये रहीम ॥१९॥
रहिमन नहीं सराहिये लेन देन की प्रीति।
प्राणनि बाजी लगि रही हार होय कै जीति ॥२०॥
रहिमन रिस सहि तजत नहीं बडे प्रीति की पौरि।
मूँकनि मारत आवही नींद बिचारी दौरि ॥२१॥
जिहि रहीम तन मन दियो कियो हिये बिच भौन।
तासों सुख दुख कहनकी रही कथा अब कौन ॥२२॥
जो पुरुषारथ ते कहूँ सम्पति मिलत रहीम।
पेट लागि बैराट घर तपत रसोई भीम ॥२३॥
ज्यौं रहीम गति दीप की कुल कपूत गति सोइ।
बारे उजियारो लगै बढै अंधेरो होइ ॥२४॥

सम्पति भरम गँवाइ कै रहत हाथ कछु नाहिं ।
ज्यौं रहीम ससि रहत है दिवस अकासहि माहिं ।।२५।।
अनुचित उचित रहीम लघु करहिं बडनके जोर ।
ज्यौं ससि के संयोग ते पचवत आगि चकोर ।।२६।।
धनि रहीम जल पंक को लघु जिय पियत अघाइ ।
उदधि बडाई कौन है जगत पियासो जाइ ।।२७।।
मांगे घटत रहीम पद कितौ करो बड काम ।
तीन पैंड बसुधा करी तऊ बामनें नाम ।।२८।।
नाद रीझि तन देत मृग नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पसु ते अधिक रीझेहु नाहिं देत ।।२९।।
रहिमन अब वे तरु कहां जिनकी छांह गँभीर ।
अब बागनि बिच देखियत सेंहुड कंज करीर ।।३०।।
बिगरी बात बनै नहीं लाख करो किन कोय ।
रहिमन बिगरे दूध को मथे न माखन होइ ।।३१।।
मथत मथत माखन रहै दही मही बिलगाइ ।
रहिमन सोई मीत है भीर परे ठहराइ ।।३२।।
रहिमन निज मनकी ब्यथा मनही राखो गोइ ।
सुनि अठिलैहैं लोग सब बांटि न लैहे कोइ ।।३३।।
रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइ हैं बनत न लागै बेर ।।३४।।

गहि शरणागत राम की भवसागर की नाव।
रहिमन जग उद्धार करि और न कछू उपाव ॥३५॥
रहिमन वे नर मरि चुके जे कछु मांगन जाहिं।
उन से पहले वे मरे जिन मुख निकसत नाहिं ॥३६॥
जाल परे जल जाति बहि तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को तऊ न छांडत छोह ॥३७॥
धन दारा अरु सुतन में रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं गाढे दिन को मित्त ॥३८॥
ससि की सीतल चांदनी सुन्दर सबहि सुहाइ।
लगे चोर चित में लगी घटि रहीम मन आइ ॥३९॥
अमृत ऐसे बचन में रहिमन रिस की गांस।
जैसे मिसिरिहु में मिली निरस बांस की फांस ॥४०॥
रहिमन मनहिं लगाइ के देखि लेहु किन कोय।
नर को बस करिबो कहा नारायन बस होइ ॥४१॥
रहिमन अँसुआ नयन ढरि जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते कस न भेद कहि देइ ॥४२॥
गुन ते लेत रहीम जन सलिल कूपते काढि।
कूपहु ते कहुँ होत है मन काहू को बाढि ॥४३॥
रहिमन मन महाराज के दृग सों नहीं दिवान।
जाहि देखि रीझै नयन मन तेहि हाथ बिकान ॥४४॥

शीत हरत तम हरत नित भुवन भरत नहिं चूक ।
रहिमन तिहि रविको कहा जो घटि लखै उलूक ॥४५॥
नहिं रहीम कछु रूप गुन नहिं मृगया अनुराग ।
देसी स्वान जु राखिये भ्रमत भूख ही लाग ॥४६॥
कागज कोसों पूतरा सहजहिं में घुर जाइ ।
रहिमन यह अचरज लखो सोऊ खैंचत बाइ ॥४७॥
रहिमन कहि इक दीप ते प्रगट सबै द्युति होइ ।
तनु सनेह कैसे दुरे दृग दीपक जरु दोइ ॥४८॥
जिहि रहीम चित आपनो कीन्हो चतुर चकोर ।
निशि बासर लागौ रहै कृष्णचन्द्र की ओर ॥४९॥
कहि रहीम धन बढ घटै जात धनिन की बात ।
घटै बढै उनको कहा घास बेचि जे खात ॥५०॥
जो रहीम होती कहूँ प्रभु गति अपने हाथ ।
तो को धौं केहि मान तो आप बडाई साथ ॥५१॥
तिहि प्रमान चलिबो भलो जो सब दिन ठहराइ ।
उमडि चलै जल पारतें जो रहीम बढि जाइ ॥५२॥
यों रहीम सुख दुख सहत बडे लोग सह सांति ।
उवत चन्द्र जेहि भांति सों अथवत ताही भांति ॥५३॥
कहि रहीम सम्पति सगे बनत बहुत बहुरीति ।
बिपति कसौटी जे कसे तेई सांचे मीत ॥५४॥

तब ही लग जीबो भलो दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत हमहिं न रुचै रहीम ॥५५॥
बड माया को दोस यह जो कबहूँ घटि जाय।
तौ रहीम मरिबो भलो दुख सहि जियै बलाय ॥५६॥
धनि रहीम गतिमीन की जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अन्त बसि कहा भौंर को भाय ॥५७॥
दादुर मोर किसान मन लाग्यो रहै घन मांहि।
पै रहीम चातक रटनि सरवर को कोउ नांहि ॥५८॥
अमर बेलि बिन मूल की प्रति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि खोजत फिरिये काहि ॥५९॥
सरवर के खग एक से बाढत प्रीति न धीम।
पै मराल को मानसर एकै ठौर रहीम ॥६०॥
कहि रहीम केती रही केती गई बिलाय।
माया ममता मोह परि अन्त चले पछिताय ॥६१॥
जो रहीम करिबो हुतो ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो गिरिवर धर गोपाल ॥६२॥
दीरघ दोहा अर्थ के आखर थोरे आहिं।
ज्यौं रहीम नटकुंडली सिमिटि कूदि कढि जाहिं ॥६३॥
जे रहीम बिधि बड किये को कहि दूषन काढि।
चन्द्र दूबरों कूबरो तऊँ नखत ते बाढि ॥६४॥

अब रहीम घर घर फिरैं मांगि मधूकरि खाहिं।
यारो यारी छोड दो अब रहीम वे नाहिं ॥६५॥
एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो फूलै फलै अघाय ॥६६॥
पात पात को सींचिबो बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी बुद्धि में कहो बरैगो कौन ॥६७॥
रहिमन धोखे भाव से मुख से निकसै राम।
पावत पूरन परम गति कामादिक को धाम ॥६८॥
रहिमन छमा बडेन को छोटनि को उतपात।
कहा विष्णु को घटि गयो भृगु जू मारी लात ॥६९॥
रहिमन कठिन चितानतें चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को चिन्ता जीव समेत ॥७०॥
पावस देखि रहीम मन कोइल साधे मौन।
अब दादुर वक्ता भये हमको पूछत कौन ॥७१॥
समय लाभ सम लाभ नहीं समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी समय चूक की हूक ॥७२॥

❀ ❀ ❀

(रसखान)

भक्ति रस महिमा

बेन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी,
हाथ वही उन गात सरे अरु पाय वही जु वही अनुजानी।
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करें मनमानी,
त्यौं रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी॥
मानस हों तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गांव के ग्वारन,
जो पसु हों तो कहा बस मेरो चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हों तो वही गिरि को जो धर्यौ कर छत्र पुरंदर धारन,
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन॥

ब्रह्म मैं ढूँढ्यौ पुरानन गानन बेद रिचा सुनि चौगुने चायन,
देख्यौ सुन्यौ कबहूँ न कितूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि पर्‌यो रसखानि बतायो न लोग लुगायन,
देखो दुर्‌यो वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटत राधिका पायन॥
सेस सुरेस गनेस महेस दिनेसहु जाहि निरंतर गावैं,
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सु बेद बतावैं।
नारद से सुक ब्यास रटे पचि हारे तऊ पुनि पार न पावे,
ताहि अहीर की छोहरियां छछियां भरि छाछ पै नाच नचावें॥
द्रौपदि औ गनिका गजगीध अजामिल सों कियो सो न निहारो,
गौतम गेहिनि कैसी तरी प्रहलाद को कैसे हर्‌यो दुःख भारो।
काहे को सोच करै रसखानि कहा करि हैं रबि नंद बिचारो,
कौन कि संक परी है जु माखन चाखन हारो सो राखन हारो॥

बाल्यवर्णन

धूर भरे अति सोभित स्याम जु तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी,
खेलत खात फिरे अँगना पग पैजनी बाजति पीरी कछोटी।
बा छबि को रसखानि बिलोकत बारत काम कला निज कोटी,
काग के भाग बडे सजनी हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी ॥

❀ ❀ ❀

उद्‍बोधन

कहा रसखानि सुख संपति सुमार कहा,
कहा तन जोगी ह्वै लगाये अंग छार को।
कहा साधे पञ्चानल कहा सोय बीच जल,
कहा जीत लाये राजसिंधु आर पार को॥
जप बार बार तप संजम बयार व्रत,
तीरथ हजार अरे बूझत लबार को।
कीन्हों नहीं प्यार नहीं सेयो दरबार चित्त,
चाह्यो न निहार जो पै नंद के कुमार को॥

❀ ❀ ❀

(बिहारी)

बिहारी के दोहे

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै स्यामु हरित दुति होइ॥ १॥

कीन्हैं हूं कोरिक जतन अब कहि काढ़ै कौनु।
भो मन मोहन रूपु मिलि पानी मैं को लौनु॥ २॥

नेहु न नैननु कौं कछू उपजी बड़ी बलाइ।
नीर भरे नित प्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाइ॥ ३॥

इन दुखिया अँखियान को सुख सिर जोइ नाहिं।
देखत बनै न देखते बिन देखे अकुलाहिं॥ ४॥

नहि परागु नहिं मधुर मधु नहि बिकासु इहिं काल ।
अली कली ही सौं बँध्यौ आगे कौन हवाल ॥ ५ ॥
जगतु जनायौ जिहिं सकलु सो हरि जान्यो नांहि ।
ज्यौं आंखिनु सब देखियै आंखि न देखी जांहि ॥ ६ ॥
दीरघ सांस न लेहि दुख सुख पाईहिं न भूल ।
दई दई क्यों करतु है दई दई सु कबूल ॥ ७ ॥
बैठि रही अति सघन बन पैठि सदन तन माह ।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौ चाहति छांह ॥ ८ ॥
कहा भयौ जो बीछुरे मो मनु तो मनु साथ ।
उड़ी जाउ कितहूं तऊ गुड़ी उड़ाइक हाथ ॥ ६ ॥
सीतलताऽरु सुबास कौ घटै न महिमा मूरु ।
पीनस वारैं जो तज्यौ सोरा जानि कपूर ॥१०॥
जब जब वै सुधि कीजिये तब तब सब सुधि जाहि ।
आंखिनु आंखि लगी रहैं आंखैं लागति नाहिं ॥११॥
थोरैं ही गुन रीझते बिसराई वह बानि ।
तुमहूं कान्ह मनौ भए आज कालिह के दानि ॥१२॥
अंग अंग नग जगमगत दीपसिखा सी देह ।
दिया बढ़ाए हूं रहै बड़ौ उज्यारौ गेह ॥१३॥
कब को टेरतु दीन रट होत न स्याम सहाइ ।
तुमहूं लागी जगत गुरु जगनायक जग बाइ ॥१४॥

पत्राहीं तिथि पाइये वा घर कैं चहुं पास।
नित प्रति पून्योई रहै आनन ओप उजास ।।१५।।
कोऊ कोरिक संग्रहौ कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति जदुपति सदा बिपति बिदारनहार ।।१६।।
कहलाने एकत बसत अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियौ दीरघ दाघ निदाघ ।।१७।।
मोर मुकुट की चन्द्रिकन यौं राजत नँदनन्द।
मनु ससि सेखर की अकस किय सेखर सतचन्द ।।१८।।
या अनुरागी चित्त की गति समझै नहिं कोइ।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्यामरङ्ग त्यौं त्यौं उज्ज्वल होइ ।।१९।।
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम।
मढ़्यौ दमामौ जात क्यौं कहि चूहे कैं चाम ।।२०।।
सकत न तुव ताते बचन मो रस कौ रसु खोइ।
खिन खिन औटे खीर लौं खरौ सवादिलु होइ ।।२१।।
जप माला छापा तिलक सरै न एको कामु।
मन कांचै नाचै बृथा सांचै रांचै रामु ।।२२।।
घरु घरु डोलत दीन ह्वै जनु जनु जाचतु जाइ।
दियै लोभ चसमा चखनु लघु पुनि बड़ौ लखाइ ।।२३।।
जसु अपजसु देखत नहीं देखत सांवल गात।
कहा करो ललच भरे चपल नैन चलि जात ।।२४।।

मोहन मूरति स्याम की अति अदभुत गति जोइ।
बसतु सुचित अन्तर तऊ प्रतिबिम्बितु जग होइ ॥२५॥
पहुंचति डटि रन सुभट लौं रोकि सकैं सब नांहि।
लाखनु हूँ की भीर मैं आंखि उहीं चलि जांहि ॥२६॥
मैं समुझ्यौ निरधार यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहां ॥२७॥
जहां जहां ठाड़्यो लखौ स्यामु सुभग सिरमौरु।
बिनहूँ उन छिनु गहि रहतु दृगनु अजौं वह ठौरु ॥२८॥
बड़े न हूजै गुननु बिनु बिरद बड़ाई पाइ।
कहत धतूरे सौं कनकु गहनौ गढ़्यौ न जाइ ॥२९॥
नर की अरु नलनीर की गति एकै करि जाइ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै तेतौ ऊंचो होइ ॥३०॥
भूषन भारु संभारि है क्यों इहिं तन सुकुमार।
सूधे पांय न धर परैं सोभा हीं कैं भार ॥३१॥
बढ़त बढ़त संपति सलिलु मन सरोजु बढ़ि जाइ।
घटत घटत सु न फिरि घटै बरु समूल कुम्हि लाइ ॥३२॥
पहिरि न भूषन कनक के कहि आवत इहिं हेत।
दरपन के से मोरचे देह दिखाई देत ॥३३॥
कोटि जतन कोऊ करैं परै न प्रकृतिहुं बीचु।
नल बल जलु ऊंचै चढ़ै अन्त नीच को नीचु ॥३४॥

गुनी गुनी सबकैं कहैं निगुनी गुनी न होतु।
सुन्यौ कहूं तरु अरक तैं अरक समानु उदोतु ॥३६॥
दुसह दुराज प्रजानु कौं क्यौं न बढ़े दुख दंदु।
अधिक अंधेरो जग करत मिलि मावस रबि चंदु ॥३७॥
तौ लगु या मन सदन मैं हरि आवैं किहिं बाट।
बिकट जुटे जौ लगु निपट खुलैं न कपट कपाट ॥३८॥
सरस कुसुम मंडरातु अलि न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारु तनु परसत मन न पत्यातु ॥३९॥
भजन कह्यौ तातैं भज्यौ भज्यौ न एकौ बार।
दूरि भजन जातैं कह्यौ सो तैं भज्यौ गंवार ॥४०॥
बसै बुराई जासु मन ताही कौ सनमानु।
भलौ भलौ कहि छोड़ियें खोटैं ग्रह जपु दानु ॥४१॥
पतवारी माला पकरी और न कछू उपाउ।
तरि संसार पयोधि कौं हरि नावैं करि नाउ ॥४२॥
जो चाहत चटक न घटै मैलौ होइ न मित्त।
रज राजसु न छुवाइ तौ नीह चीकनौं चित्त ॥४३॥
लाल तुम्हारे रूप की कहौ रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग लागत पलक पलौ न ॥४४॥
थोरेई गुन रीझते बिसराई वह बानि।
तुमहूं कान्ह मनो भये आज कालिह के दानि ॥४५॥

अरे हंस या नगर में जैयो आप बिचारि।
कागन सों जिन प्रीति करि कोयल दई बिडारि ।।४६।।
कनकु कनक तैं सौगुनौ मादकता अधिकाइ।
उहिं खाए बौराइ इहिं पाएं हीं बौराइ ।।४७।।
तो रस रांच्यो आन बस कहौ कुटिल मति कूर।
जीभ निंबौरी क्यौं लगै बौरी चाखि अंगूर ।।४८।।
कीजै चित सोई तरै जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन औगुन गननु गनौ न गोपीनाथ ।।४९।।
संगति सुमति न पावहीं परै कुमति कै धन्ध।
राखौ मेलि कपूर मैं हींग न होइ सुगन्ध ।।५०।।
हरि कीजति बिनती यहै तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भांति डर्‌यौ रह्यौं पर्‌यौ रहौं दरबार ।।५१।।
गिरितैं ऊँचे रसिक मन बूड़े जहां हजारु।
वहै सदा पसुनरनु कौं प्रेम पयोधि पगारु ।।५२।।
जिन दिन देखे वे कुसुम गई सु बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मैं अपत कँटीली डार ।।५३।।
मैं बरजी कैं बार तूँ इत कित लेति करौंट।
पंखुरी लगैं गुलाब की परिहै गात खरौंट ।।५४।।
मोहूं दीजै मोषु ज्यौं अनेक अधमनु दियौ।
जौ बांधै ही तोषु तौ बांधौ अपनैं गुननु ।।५५।।

मोहतु संगु समान मौं यहै कहै सबु लोगु।
पान पीक ओठनु बनै काजर नैननु जोगु ॥५६॥
सबै हँसत करतार दै नागरता कैं नांव।
गयौ गरबु गुनकौ सरबु गऐं गंवारैं गांव ॥५७॥
बहकि बड़ाई आपनी कत रांचत मतिभूल।
बिनु मधु मधुकर कै हियै गड़ै न गुड़हर फूल ॥५८॥
स्वारथु सुकृतु न श्रमु बृथा देखि बिहंग बिचारि।
बाज पराऐं पानि परि तूं पच्छीनु न मारि ॥५९॥
संगति दोषु लगै सबनु कहैति सांचे बैन।
कुटिल बंक भ्रुव सङ्ग भए कुटिल बंकगति नैन ॥६०॥
नये बिससियहि लखि नए दुरजन दुसह सुभाइ।
आंटैं परि प्राननु हरत कांटैं लौं लगि पाइ ॥६१॥
अति अगाधु अति औथरौ नदी कूपु सरु बाइ।
सो ता कौ सागरु जहां जाकी प्यास बुझाइ ॥६२॥
मानहु बिधि तन अच्छ छबि स्वच्छ राखिबै काज।
दृग पग पोंछन कौं करै भूषन पायंदाज ॥६३॥
करौ कुवत जगु कुटिलता तजौं न दीन दयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥६४॥
दूरि भजत प्रभु पीठि दै गुन बिस्तारन काल।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि चंगरंग भूपाल ॥६५॥

कहै यहै स्रुति समृत्यौ यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसकहीं पातक राजा रोग ॥६६॥
जो सिर धरि महिमा मही लहियत राजा राइ।
प्रगटत जडता अपनियै सु मुकटु पहिरत पाइ ॥६७॥
को कहि सकै बड़ेनु सौं लखै बड़ीयौ भूल।
दीने दई गुलाब को इन डारनु वे फूल ॥६८॥
या भव-पारावार कौं उलँघि पार को जाइ।
तिय छबि छाया ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ ॥६९॥
दिन दस आदरु पाइकै करिलै आपु बखानु।
जौ लगि काग सराध पखु तौ लगि तौ सनमानु ॥७०॥
मरतु प्यास पिंजरा पर्यौ सुआ समै कैं फेर।
आदरु दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर ॥७१॥
इहीं आस अटक्यौ रहतु अलि गुलाब कैं मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त ऋतु इन डारनु वे फूल ॥७२॥
वे न इहां नागर बढ़ी जिन आदर तो आब।
फूल्यो अनफूल्यो भयौ गंवई गांव गुलाब ॥७३॥
चल्यौ जाइ ह्यां को करै हाथिनु कौ व्यापार।
नहिं जानतु इहिं पुर बसैं धोबी ओड़ कुंभार ॥७४॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतौ उदोतु।
बंक बकारी देत ज्यौं दामु रुपैया होतु ॥७५॥

जाकैं एको एक हूं जग ब्यौसाइ न कोइ।
सो निदाघ फूलै फरै आकु डहडहो होइ ॥७६॥

नहिं पावसु ऋतुराजु यह सुनु तरवर मति भूल।
अपतु भएं बिनु पाइहै क्यों नव दल फल फूल ॥७७॥

नीच हियै हुलसौ रहैं गहैं गेंद को पोत।
ज्यौं ज्यौं माथे मारियत त्यौं त्यौं ऊँचो होत ॥७८॥

प्रलय करन बरषन लगे जुरि जलधर इक साथ।
सुरपति गरबु हर्‌यौ हरषि गिरिधर गिरि धरि हाथ ॥७६॥

बुरौ बुराई जो तजै तो चित खरो सकातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि गनै लोग उतपातु ॥८०॥

ओछे बड़े न ह्वै सकैं लगो सतर ह्वै गैन।
दीरघ होहिं न नैंकहूँ फारि निहारै नैन ॥८१॥

लाज लगाम न मानहीं नैना मो बस नाहिं।
ऐ मुँह जोर तुरंग ज्यौं ऐंचत हूँ चलि जाहिं ॥८२॥

इती भीर हूँ भेदि कै कितहूँ ह्वै इत आइ।
फिरै डीठि जुरि डीठि सौं सबकी डीठि बचाइ ॥८३॥

पटु पांखै भखु कांकरै सदा परेई सङ्ग।
सुखी परेवा पुहुमि में एकै तुही बिहङ्ग ॥८४॥

प्रेमु अडोलु डुलै नहीं मुँह बोलै अनखाइ।
चित उनकी मूरति बसी चितवनि मांहि लखाइ ॥८५॥

मनमोहन सौं मोह करि तू घनस्यामु निहारि।
कुंजबिहारी सौं बिहरि गिरधारी उर धारि ॥८६॥
समै पलट पलटै प्रकृति को न तजै निज चाल।
भो अकरुन करुना करौ इहिं कपूत कलि काल ॥८७॥
चटक न छांडतु घटतु हूँ सज्जन नेहु गंभीरु।
फीको परे न बरु फटै रंग्यो चोल रंग चीरु ॥८८॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरभि भज्यौ चहत त्यौं त्यौं उरझत जात ॥८६॥
सघन कुंज छाया सुखद सीतल सुरभि समीर।
मनु ह्वै जातु अजौं वहै उहि जमुना कै तीर ॥६०॥
सोहतु ओढैं पीत पटु स्याम सलौनैं गात।
मनौं नील मनि सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात ॥६१॥
ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउंगौ हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है मो तारिबो गोपाल ॥६२॥

❀ ❀ ❀

(भूषण)

शिवा जी का माहात्म्य

गरुड को दावा सदा नाग के समूह पर,

दावा नाग जूह पर सिंह सिरताज को।

दावा पुरहूत को पहारन के कुल पर,

पच्छिन के गोल पर दावा सदा बाज को ॥ १ ॥

भूषण अखंड नवखंड महिमंडल में,

तम पर दावा रबि किरन समाज को।

पूरब पछांह देश दच्छिन ते उत्तर लौं,

जहां पादसाही तहां दावा सिवराज को ॥ २ ॥

बेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत,
राम नाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर में॥ ३॥
मीडि राखे मुगल मरोडि राखे पातसाह,
बैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज,
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में॥ ४॥
उतरि पलंग ते न दियो है धरा पै पग,
तेउ सगबग निसि दिन चली जाति हैं।
अति अकुलातीं मुरझातीं न छिपातीं गात,
बात न सोहाती बोलैं अति अनखाती हैं॥ ५॥
भूषन भनत सिंह साही के सपूत सिवा,
तेरी धाक सुने अरि नार बिललाती हैं।
कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती,
घरै तीनि बेर खातीं ते वै वीनि बेर खाती हैं॥ ६॥
किबले के ठौर बाप बादसाह साहिजहां,
ताको कैद कियो मानों मक्के आगि लाई है।
बडो भाई दारा वाको पकरि के कैद कियो,
मेहरहु नाहिं माको जायो सगो भाई है॥ ७॥

बंधु तौ मुरादबक्स बादि चूक करिबे को,
　　　　बीच लै कुरान खुदा की कसम खाई है।
भूषन सुकवि कहै सुनौ नव रङ्ग जे,
　　　　एते काम कीन्हे फेरि पादशाही पाई है॥ ८॥

(वृन्द)

वृन्दसतसई

भजन निरन्तर सन्त जन हरि पद चित्त लगाय ।
जैसे नट दृढ दृष्टि करि धरत बरत पर पांय ।। १ ।।
नीकी पै फीकी लगै बिनु अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध में रस सिंगार न सुहात ।। २ ।।
फीकी पै नीकी लगै कहिये समय बिचारि ।
सब को मन हरषित करै ज्यौं विवाह मैं गारि ।। ३ ।।
रागी अवगुन ना गनै यहै जगत की चाल ।
देखौ सब ही श्याम कों कहत बाल सब लाल ।। ४ ।।

जौ जाकौं प्यारौ लगै सो तिहिं करत बखान।
जैसै विष को विषमखी मानत अमृत समान ॥ ५ ॥
कहा होय उद्यम किये जौ प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसै निपजै खेत कौ करै सलभ निरमूल ॥ ६ ॥
जो जाही को ह्वै रहै सो तिहिं पूरै आस।
स्वाति बूँद बिनु सघन मैं चातक मरत पियास ॥ ७ ॥
गुनही तऊ मनाइयै जो जीवन सुख भौन।
आग जरावत नगर तउ आग न आनत कौन ॥ ८ ॥
कीजै समझ न कीजियै बिन बिचारि बिबहार।
आय रहत जानत नहीं सिर कौ पायन भार ॥ ९ ॥
दीबौ अवसर कौ भलौ जासौं सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो घन को कौने काम ॥१०॥
अपनी पहुँच बिचारि कै करतब करियै दौर।
तेते पांव पसारियै जेती लांबी सौर ॥११॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सों करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध कौ पीवत छाछहि फूँकि ॥१२॥
प्रान तृषातुर के रहैं थोरे हूँ जलदान।
पीछै जलभर सहस घट डारे मिलत न प्रान ॥१३॥
अनमिलती जोई करत ताही कौ उपहास।
जैसै जोगी जोग मैं करत भोग की आस ॥१४॥

बड़े बड़न को दुख हरत पै न नीच यह थाप।
घन मेटत पै ना सरित गिरबर ग्रीषम ताप॥१५॥
गुरुता लघुता पुरुष की आस्रय बसतैं होय।
करी बूँद मैं बिंध्य सौं दरपन मैं लघु होय॥१६॥
उपकारी उपकार जग सब सों करत प्रकास।
ज्यों कटु मधुरे तरु मलय मलयज करत सुबास॥१७॥
बिधि रूठै तूठै कवन को करि सकै सहाय।
बनदव भय जलगत नलिन तहं हिम देत जराय॥१८॥
करियै सुख कौं होत दुख यह कहु कौन सयान।
वा सोने कौं जारियै जासों टूटै कान॥१९॥
नैना देत बताय सब हितकौ हेत अहेत।
जैसैं निरमल आरसी भली बुरी कह देत॥२०॥
अति परचै तैं होत है अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी चन्दन देत जराय॥२१॥
सो ताके अवगुन कहै जो जिहिं चाहै नाहिं।
तपत कलंकी विष भऱ्यो बिरहिन ससिहिं कहाहि॥२२॥
बिधि के बिरचे सुजन हूँ दुर्जन सम ह्वै जात।
दीपहि राखै पवन ते अंचल वहै बुझात॥२३॥
जासों जैसौ भाव सो तैसौ ठानत ताहि।
ससिहि सुधाकर कहत कोउ कहत कलंकी आहि॥२४॥

आप बुरे जग है बुरौ भलौ भले जग जानि।
तजत बहेरा छांह सब गहत आंब की आनि ॥२५॥

भाव भाव की सिद्धि है भाव भाव में भेव।
जो मानौं तो देव है नहीं भीत कौ लेव ॥२६॥
बिन गुन कुल जाने बिना मान न करि मनुहारि।
ठगत फिरत सब जगत कौं भेप भक्त कौ धारि ॥२७॥
हितहूँ की कहियै न तिहिं जो नर होय अबोध।
ज्यौं नकटे कौं आरसी होत दिखाए क्रोध ॥२८॥
अति अनीति लहियै न धन जो प्यारौ मन होय।
पाए सोने की छुरी पेट न मारै कोय ॥२९॥
सबै सहायक सबल के कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं दीपहि देत बुझाय ॥३०॥
कछु बसाय नहिं सबल सों करै निबल पर जोर।
चलै न अचल उखारि तरु डारति पवन झकोर ॥३१॥
सबै समझ कै कीजियै काम वहै अभिराम।
सैंधव मांग्यौ जेवँते घोरा कौ कहा काम ॥३२॥
जिय पिय चाहै तुम करौ घन चन्दन उपचार।
रोग कछू औषध कछू कैसैं होत करार ॥३३॥
अति हठ मत कर हठ बढ़ै बात न करिहै कोय।

ज्यौं ज्यौं भीजे कामरी त्यों त्यौं भारी होय ॥३४॥
लालच हू ऐसौ भलौ जासौं पूरे आस।
चाटे हूँ कहु ओस के मिटै काहु की प्यास ॥३५॥
विषहू ते सरसी लगे रिस में रस की भाख।
जैसे पित्त ज्वरीन कौं करवी लागति दाख ॥३६॥
हरिरस परिहरि बिषयरस संग्रह करत अयान।
जैसैं कोऊ करत है छांड़ि सुधा विषपान ॥३७॥
असुभ करत सोइ होत सुभ सज्जन बचन अनूप।
स्रवन पिता दिय दसरथहि स्राप भयो बर रूप ॥३८॥
एक भले सब कौं भलौ देखौ सबद विवेक।
जैसैं सत हरिचन्द के उधरे जीव अनेक ॥३९॥
एक बुरे सब कौ बुरौ होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयो सब छत्रिन कौ लोप ॥४०॥
आडंबर तजि कीजियै गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहित न बिकै गऊ आनौ घंट बंधाय ॥४१॥
जैसो गुन दीनौ दई तैसौ रूप निबंध।
ए दोऊ कहं पाइयै सोनौ और सुगंध ॥४२॥
होय कछू समझै कछू जाकी मति बिपरीत।
कनक भखी जैसे लखै स्याम सेत कौ पीत ॥४३॥
प्रेम निबाहन कठिन है समझ कीजियौ कोय।

भांग भखन है सुगम पै लहर कठिन ही होय ॥४४॥
देव सेव फल देत है जाको जैसौ भाय।
जैसैं मुख करि आरसी देखौ सोइ दिखाय ॥४५॥
जैसो बंधन प्रेम कौ तैसौ वंध न और।
काठहि भेदै कमल कौं छेद न निकरै भौंर ॥४६॥
जो सब ही कौ देत है दाता कहियै सोइ।
जलधर बरसत सम बिषम थल न बिचारत कोइ ॥४७॥
नवल नेह आनँद उमँग दुरै न मुख चख ओर।
तब ही जान्यौ जात है ज्यौं सुगंध कौ चोर ॥४८॥
एक बस्तु गुन होत है भिन्न प्रकृत के भाय।
भटा एक कौं पित करत करत एक कौं बाय ॥४९॥
सुख बीते दुख होत है दुख बीते सुख होत।
दिवस गए ज्यौं निसि उदित निसगत दिवस उदोत ॥५०॥

पर घर कबहुँ न जाइयै गए घटत है जोति।
रबि मंडल में जाति ससि छीन कला छबि होति ॥५१॥
होय शुद्ध मिटि कलुषता सत संगति कौ पाय।
जैसें पारस को परसि लौह कनक ह्वै जाय ॥५२॥
ब्रह्म बनाए बन रहे ते फिर और बनै न।
कान कहत नहिं बैन ज्यौं जीभ सुनत नहिं बैन ॥५३॥

जे चेतन ते क्यौं तजैं जाकौ जासो मोह।
चुंबक के पीछे लग्यौ फिरत अचेतन लोह ॥५४॥
घटति बढ़ति संपति सुमति गति अरहट की जोय।
रीती घटिका भरति है भरी सु रीती होय ॥५५॥
या जग की बिपरीति गति समझी देखि सुभाव।
कहैं जनार्दन कृष्ण कौं हर कौ शंकर नांव ॥५६॥
एक बिरानौ ही भलौ जिहिं सुख होत सरीर।
जैसैं बन की ओषधी हरत रोग की पीर ॥५७॥
जो पावै अति उच्च पद ताकौ पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं अस्त होतु है भान ॥५८॥
एकहि गुन ऐसौ भलौ जिहिं अवगुन छिप जात।
नीरद के ज्यौं रंग बद बरसत ही मिट जात ॥५९॥
धन संच्यौ किहिं काम कौ खाउ खरच हरि प्रीति।
बंध्यो गंधीलौ कूपजल कढ़ै बढ़ै इहिं रीति ॥६०॥
निहचै भावी कौ कहौ प्रतीकार जौ होइ।
तौ नल से हरचंद से बिपत न भरते कोइ ॥६१॥
बहुत निबल मिलि बल करैं करैं जु चाहे सोय।
तिनकन की रसरी करी करी निबंधन होय ॥६२॥
सुजन कुसङ्गति सङ्ग तैं सज्जनता न तजन्त।
ज्यौं भुजंग गन सङ्ग तउ चन्दन बिष न धरंत ॥६३॥

थोरे ही गुन तैं कहुँक प्रगट होत जग मांहि।
एकहि कर ते जय करी करी सहस कर नाहिं ॥६४॥
बिनसत सतगुन गुनिय के अगुन पुरुष के पास।
ज्यौं अंजन गिर चन्द कर नैक न होत प्रकास ॥६५॥
सांच झूठ निरनै करै नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै छीर नीर कौं दोय ॥६६॥
जे पर ते पर यह समझ अपनौ होय न कोय।
पालै पोषै काग तउ पिक सुत काग न होय ॥६७॥
उद्यम कबहुँ न छांड़ियै पर आसा के मोद।
गागरि कैसैं फोरियै उनयौ देखि पयोद ॥६८॥
बड़े सहज ही बात तैं रीझि देत बकसीस।
तुलसी दल तैं विष्णु ज्यौं आक धतूरे ईस ॥६९॥
जदपि आपनौ होय तउ दुख में करत न सीर।
ज्यौं दुखती अंगुरी निकट दुसरी ताहि न पीर ॥७०॥
हितहू भलौ न नीच कौ नाहिन भलौ अहेत।
चाटि अपावन तन करै काटि स्वान दुख देत ॥७१॥
धन बाढ़ै मन बढ़ि गयो नाहिन मन घट होय।
ज्यौं जल सङ्ग बाढ़ै जलज जल घट घटै न सोय ॥७२॥
देवनहू सौं देव प्रभु कहा सुरेस नरेस।
कीनौ मीत धनेस तउ पहरैं चर्म महेस ॥७३॥

अनमिल सुमिल समाज सों होत गए उठि चैन।
जैसैं तिन पर देत दुख निकसै बिकसै नैन ॥७४॥
मिलैं सुसङ्गति उन्नहू करत नीच सों प्यार।
खर कौं गङ्ग न्हवाइए तऊ न छांड़ै छार ॥७५॥

प्रेम छके मन कौं हटकि रखि न सकै कुल लाज।
कमल नाल के तंतु सों को बांधै गजराज ॥७६॥
बिपत परे सुख पाइए ता ढिग करिए भौन।
नैन सहाई बधिर के अंध सहाई स्रौन ॥७७॥
बांके सीधे को मिलन निबहै नाहिं निदान।
गुनग्राही तोऊ तजत जैसे बान कमान ॥७८॥
होत न कारज मो बिना यह जु कहै सु अयान।
जहां न कुक्कुट शब्द तहं होत न कहा बिहान ॥७९॥
बिपति बड़ेई सहि सकैं इतर बिपति में दूर।
तारे न्यारे रहत हैं गहै राहु ससि सूर ॥८०॥
ठौर छुटे तें मीत हू ह्वै अमीत सत रात।
रबि जल उखरे कमल कौं जारत गारत जात ॥८१॥
होत बहुत धन होत तउ गुन जुत भए उदोत।
नेह भर्‍यो दीपक तऊ गुन बिनु जोति न होत ॥८२॥
जात गुनी जात न तहां आडंबर युत सोय।

पहुंचे चंग अकास लौं जौ गुन संयुत होय ॥८३॥
विद्या गुरु की भक्ति सौं कै कीन्हे अभ्यास।
भील द्रोण के बिन कहे सीख्यो बान बिलास ॥८४॥
उद्यम बुधि बल सौं मिलै तब पावत सुख साज।
अंधकंध चढ़ि पंगु ज्यौं सबै सुधारत काज ॥८५॥
छोटे अरि पर चढ़तहूँ सजै सुभट तनत्रान।
लीजै ससा अखेट पर नाहर कौ सामान ॥८६॥
ताकौ अरि कहा करि सकै जाकौ जतन उपाय।
जरै न ताती रेत सौं जाके पनही पाय ॥८७॥
वीर पराक्रम तैं करै भुवमंडल कौ राज।
जोरावर यातैं करत बन अपनौ मृगराज ॥८८॥
जो हाजिर अवसान पर सोई शस्त्र प्रमान।
दाभहि तैं बलदेव ज्यौं हरे सूत के प्रान ॥८९॥
काहू सों नाहीं मिटै अपरापत के अङ्क।
बसत ईस के सीस तउ भयो न पूर्न मयंक ॥९०॥
कोऊ दूर न करि सकै बिधि के उलटे अङ्क।
उदधि पिता तउ चन्द को धोय न सक्यो कलङ्क ॥९१॥
करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान।
रसरी आवत जात तैं सिल पर परत निसान ॥९२॥
सुख दिखाय दुख दीजियै खल सों लरियै नाहिं।

जो गुर दीने ही मरै क्यों विष दीजै ताहि ॥९३॥
सब सुख है सन्तोष मैं धरियै मन सन्तोष ।
नेक न दुरबल होत है सर्प पवन के पोष ॥९४॥
पांय परेहू पिसुन सों बिससि न करिए बात ।
नमत कूप को डोल ज्यौं जीवनहर लै जात ॥९५॥
बिनसत बार न लागई ओछे जन की प्रीति ।
अम्बर डम्बर सांझ के ज्यौं बारू की भीति ॥९६॥
कहे मूढ की बात के करिए जो चित होय ।
सौंह दिवाए और के परे अग्नि में कोय ॥९७॥
सुबुध बीच परि दुहुंन कों हरत कलह रस पूर ।
करत देहरी दीप ज्यौं घर आंगन तम दूर ॥९८॥
कुल सपूत जान्यो परै लखि सुभ लच्छन गात ।
होनहार बिरवान के होत चीकने पात ॥९९॥
का रस में का रोष में अरि ते जनि पतियाय ।
जैसैं सीतल तप्त जल डारत आगि बुझाय ॥१००॥

दोऊ चाहैं मिलन कौं तौ मिलाप निरधार ।
कबहूँ नाहिन बाजि है एक हाथ सौं तार ॥१०१॥
जामें विद्या नारदी बिगरन देत न लाग ।
पैस चोर भुंसि स्वान कौं कहत धनी सौं जाग ॥१०२॥

सबुध अबुध की सेन कौ यह सरूप जिय थाप।
थल में रोपित कमल ज्यौ बधिर करन ज्यौं जाप ॥१०३॥
ऊँचे पद कौं पाय लघु होय तुरत ही पात।
घन तैं गिरि पर गिरत जल गिरिहू तैं ढरि जात ॥१०४॥
बिना दिए न मिलै कछू यह समझौ सब कोय।
होत सिसिर में पात तरु सुरभि सपल्लव होय ॥१०५॥
निसदिन खटकत तनक तृन परै जु आंखनि माहिं।
तिनमैं सज्जन राखिए सो छिन खटकतु नाहिं ॥१०६॥
देखत कौ पै कछु नहीं मुख पै खल की प्रीति।
मृग तृष्णा में होति है ज्यों जल की परतीति ॥१०७॥
उत्तम विद्या लीजियै जदपि नीच पै होय।
पर्यौ अपावन ठौर कौ कंचन तजत न कोय ॥१०८॥
प्रीति टुटैहू सजन के मन तैं हेत छुटै न।
कमल नाल कौं तोरियै तदपि सूत टूटै न ॥१०९॥
प्रभु कौं चिंता सबन की आपु न करियै नाहिं।
जनम अगाऊ भरत है दूध मात थन माहिं ॥११०॥
सेवक सोई जानियै रहै बिपति में सङ्ग।
तन छाया ज्यों धूप मैं रहै साथ इक रंग ॥१११॥
क्षमा खड्ग लीने रहै खल कौ कहा बसाय।
अगिन परी तृन रहित थल आपहि तैं बुझि जाय ॥११२॥

रस पोषै बिनहीं रसिक रस उपजावत संत।
बिन बरसै सरसै रहैं जैसैं बिटप बसंत ॥११३॥
जहां सजन तहँ प्रीति है प्रीति तहां सुख ठौर।
जहां पुष्प तहँ बास है जहां बास तहँ भौंर ॥११४॥
अगम पन्थ है प्रेम कौ जहां ठकुरई नाहिं।
गोपिन के पीछैं फिरे त्रिभुवनपति बन माहिं ॥११५॥
बचन रचनन कापुरुष के कहे न छिन ठहराय।
ज्यौं कर पद मुख कछपके निकसि निकसि दुर जाय ॥११६॥
सरसुति के भण्डार की बड़ी अपूरब बात।
ज्यौं खरचै त्यौं त्यौं बढ़ै बिन खरचै घटि जात ॥११७॥
एक एक सौं लगि रहै अन्नोदक सम्बन्ध।
चोली दामन ज्यौं रच्यौ जगत जंजीरा बन्ध ॥११८॥
चिदानन्द घट में बसै बूझत कहां निवास।
ज्यौं मृग मद मृग नाभि में ढूंढत फिरत सु बास ॥११९॥
सरस निरस नर होतु है समय पाय सब कोइ।
दिन में परम प्रकास रवि चन्द मन्द दुति होइ ॥१२०॥
बांके रन तैं होतु है बन्दनीक सब लोय।
नमत दुतीया चन्द कौं पूरन चन्द न कोय ॥१२१॥
भले भले बिधिना रचे पै सदोस सब कीन।
कामधेनु पसु कठिनु मनि दधि खारो ससि छीन ॥१२२॥

यों निबाह सब जगत कौ रस रिस हेत अहेत।
एक एक पै लेत है एक एक कौं देत ॥१२३॥
तृन हूँ तैं अरु तूल तैं हरओ जाचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है पवन उड़ावत नाहि ॥१२४॥
देखत है जग जातु है तउ ममता सौं मेल।
जानतु हौं या जगत में देखत भूलो खेल ॥१२५॥

(रसनिधि)

ब्रह्म की व्यापकता

अब तौ प्रभु तारैं बनै ना तर होत कुतार।
तुम ही तारन तरन हौ सो मोरै आधार ॥ १ ॥
सुबस बसत ते चित नगर जहां बसत हरि आइ।
ऐसे तो ऊजर परी तन की किती सराइ ॥ २ ॥
अद्‌भुत गति यह रसिकनिधि सरस प्रीत की बात।
आवत ही मन सांवरो उर को तिमिर नसात ॥ ३ ॥
रसनिधि वाकौ कहत हैं याही तैं करतार।
रहत निरन्तर जगत को वाही के कर तार ॥ ४ ॥

तेरी गति नन्द लाड़ले कछू न जानी जाइ।
रज हूँ तैं छोटो जु मन ता मैं बसियत आइ॥ ५॥
घरी बजी घरयार सुन बजिकै कहत बजाइ।
बहुरि न पैहे यह घरी हरि चरनन चित लाइ॥ ६॥
हरि बिनु मन तुव कामना नैकु न आवे काम।
सपने के धन सौं भरे किहि ले अपनो धाम॥ ७॥
आपु भँवर आपुहि कमल आपुहि रंग सुबास।
लेत आपुही बासना आपु लसत सब पास॥ ८॥
सांची सी यह बात है सुनियौ सज्जन सन्त।
स्वांगी तो वह एक है वहि के स्वांग अनन्त॥ ६॥
यों सब जीवन की लखौ ब्रह्म सनातन आद।
ज्यों माटी के घटन की माटी पै बुनियाद॥१०॥
जल हूँ में पुनि आपही थल हूँ में पुनि आपु।
सब जीवन में आपु है लसत निरालौ आपु॥११॥
अनल दिवैया आपु ही अनल लिवैया आपु।
अनल मांझ जो अनिल वह रसनिधि सोई आपु॥१२॥
कुदरत वाकी भर रही रसनिधि सब ही जाग।
ईंधन बिन बनियौ रहै ज्यौं पाहन में आग॥१३॥
हिन्दू में क्या और है मुसलमान में और।
साहिब सब का एक है व्याप रहा सब ठौर॥१४॥

जदपि रह्यौ है भाव तौ सकल जगत भरपूर।
बल जैये वा ठौर की जहँ ह्वै करै जहूर ॥१५॥
करत फिरत मन बावरे आप नहीं पहचान।
तोही में परमातमा लेत नहीं पहचान ॥१६॥
कठिन दुहूँ बिधि दीप कौं सुन हो मीत सुजान।
सब निसि बिन देखै जरै मरै लखै मुख भान ॥१७॥
हित करियत यह भांति सौं मिलियत है वह भांत।
छीर नीर तैं पूछ लै हित करिबे की बात ॥१८॥

प्रणय

बढ़त आपनौ गोत कौ और सबै अनखाइ।
सुहृद नैन नैना बढ़े देखत हियौ सिहाइ ॥ १ ॥
अरे मीत या बात कौ देख हिये कर गौर।
रूप दुपहरी छांह कब ठहरानी इक ठौर ॥ २ ॥
रूप चांदनी की गढ़ी स्वच्छ राखिबे हेत।
हग फरास हाजिर खड़े बरुनि बहारू देत ॥ ३ ॥
रूप कहर दरयाव में तरिबौ है न सलाह।
नैनन समुझावत रहै निसि दिन ज्ञान मलाह ॥ ४ ॥
उरतम में आवत डरौ जौ तुम नन्द कुमार।
चित मुरोसनी रूप तुव लियै खड़े हग द्वार ॥ ५ ॥

जब जब वह ससि देत है अपनी कला गंवाइ ।
तब तब तव मुखचन्द पै कला मांगि लै जाइ ॥ ६ ॥
तेरे नैन मसालची रूप मसाल दिखाइ ।
नेही तन तैं विरहतम दीनौ दूर भजाइ ॥ ७ ॥
रूप सरोवर मांहि तुव फूले नैन सरोज ।
ताहित अलि नेही तहां आवत दौरे रोज ॥ ८ ॥
मन मैला मन निरमला मनदाता मन सूम ।
मन ज्ञानी अज्ञान मन मनहि मचाई धूम ॥ ९ ॥
उड़ौ फिरत जो तूल सम जहां तहां बेकाम ।
ऐसे हरुये को धर्यो कहा जान मन नाम ॥१०॥
जसुमति या ब्रज में कहो अब निबाह क्यौं होइ ।
तब दधि चोरी होतही अब चित चोरी होइ ॥११॥
उदौ करत जब प्रेमरवि पूरब दिसि तैं आइ ।
कहूँ नैमतम जात है देखौ जात बिलाइ ॥१२॥
प्रेम पियाला पी छके तेई हैं हुसियार ।
जे मायामद सौं भरे ते बूड़े मंझधार ॥१३॥
न्यारौ पैड़ौ प्रेम कौ सहसा धरौ न पांव ।
सिर के पैड़े भाव ते चलौ जाय तौ जाव ॥१४॥
तौ तुम मेरे पलन तैं पलक न होते ओट ।
व्यापी होती जो तुम्हें ओट भये की चोट ॥१५॥

मेरेई अनुराग में कछु इक खोट दिखाइ।
जातैं मनपट लाल कौ हो न रंगीलो जाइ ॥१६॥
या भीने हित तार मैं बल एतौ अधिकाइ।
अखिल लोक को ईश जो जासौ बांधो जाइ ॥१७॥
जिन मोहन ने सहज में नख पर धरौ पहार।
भारी कैसे कै लगै तिनहि बिरह कौ भार ॥१८॥
गोबरधन नख धर लियौ गोपी ग्वाल बुलाइ।
अब गिरधर यह बिरह सिर क्यों न उठावत आइ ॥१९॥
बिन दरसन सरसन लगौ बिरह तरनि तन जोर।
आइ स्यामघन बरसिये मेह नेह यह ओर ॥२०॥
अरी नींद आवै चहै जिहि दृग बसत सुजान।
देखी सुनी धरी कहूँ दो असि एक मयान ॥२१॥
मोहन लखि जो बढ़त सुख सो कछु कहत बनै न।
नैनन कै रसना नहीं रसना के नहिं नैन ॥२२॥
बार बार नहिं होत है औसर मौसर बार।
सौ सिर दीबे कौ अरे जौ फिर हूजे त्यार ॥२३॥
रे कुचील तन तेलिया अपनों मुख तौ हेर।
सुमननि बासे तिलन कौं काहे डारत पेर ॥२४॥

प्रबोधन

तन मन तोपै बारिबो यह पतंग कौ काम।
एतेहूँ पै जारिबौ दीप तिहारोहि काम ॥ १ ॥
अरे निरदई मालिया फूले सुमननि तोर।
नैक कसक कर हेर तौ प्रीति डार की ओर ॥ २ ॥
हरी करत है पुहुमि सब घन तूं रस बरसाइ।
आक जवासे कौं अरे काहै देत जराइ ॥ ३ ॥
प्यास सहत पी सकत नहीं औघट घाटनि पान।
गज की गरुआई परी गज ही के गर आन ॥ ४ ॥
धरि सोनै कै पींजरा राखौ अमृत पिवाइ।
विष कौ कीरा रहत है विष ही में सुख पाइ ॥ ५ ॥
कोलत काठ कठोर क्यौं होत कमल में बन्द।

आई मो मन भंवर की इतनी बात पसन्द ॥ ६ ॥
धरे जदपि बहु मोल के घरन जवाहिर हूब ।
आनन्द के औसर तऊ सीस बांधियत दूब ॥ ७ ॥
सब ही को पोषत रहे अमृत कला सरसाइ ।
ससि चकोर के दरद कौं अजौं सकत नहिं पाइ ॥ ८ ॥
बैठत इक पग ध्यान धरि मीनन कौं दुख देत ।
बकमुख कारे होगये रसनिधि याही हेत ॥ ९ ॥
अमित अथाहै हो भरे जदपि समुद अभिराम ।
कौन काम के जौ न तुम आए प्यासन काम ॥१०॥
ससि चकोर के दरद कौ जब तुहिं असर न होइ ।
कुहू निसा षोडश कला तब तैं बैठत खोइ ॥११॥
या गुलाब के फूल कौं सदा न रंग ठहराइ ।
मधुकर मत पच तूं अरे वासों नेह लगाइ ॥१२॥
उयै सोख जल लेत है बिना उयै दुख देत ।
कठिन दुहूं बिधि कमल कौ करै मीत सों हेत ॥१३॥
होते जोपै चलत कहूं सदा चाम के दाम ।
रहन न देते बेदरद काहू तन में चाम ॥१४॥
चल न सकैं निज ठौरतैं जे तन द्रुम अभिराम ।
तहां आइ रस बरसिबौ लाजिम तुहि घनस्याम ॥१५॥

रसिक की याचना

रोम रोम जो अघ भरयौ पतितन में सिरनाम ।
रसनिधि वाहि निबाहिबौ प्रभु तेरोई काम ॥ १ ॥
गंग प्रगट जिहि चरन तैं पावन जग कौ कीन ।
तिहि चरनन कौ आसरौ आइ रसिकनिधि लीन ॥ २ ॥
मधुसूदन यह बिरह अरु अरि नित मांडत रार ।
करुना निधि अब यह समै अपनौ विरद बिचार ॥ ३ ॥
लखि औगुन तन आपनै भूल सबै सुधि जाइ ।
अधम उधारन विरद तुव रसनिधि सुमिर सुहाइ ॥ ४ ॥
हौं अति अघ भारन भरौ अधमन कौ सरदार ।
अधम उधारन नाम तुव सो मेरै आधार ॥ ५ ॥

जो करुनामय हेरिहौ मो करनी को छोर।
मोसौं पतित न पाइहौ ढूंढेहू छिति छोर ॥ ६ ॥
जदपि अकरनी है करी मैं हर भांति मुरारि।
प्रभु करनी कर आपनी सब बिध लेहु सुधारि ॥ ७ ॥
अधम उधारन विरद तुव अधम उधारन काज।
जोपै रसनिधि औगुनी तुमैं सौगुनी लाज ॥ ८ ॥

(पद्माकर)

राम से याचना

ब्याधहूँ ते बिहद असाधु हों अजामिल लों,
ग्राहतें गुनाही कहो तिन में गिनाओगे।
स्यारी हों, न शूद्र हों न कवट कहुँ को त्यों,
न गौतमी तिया हों जापै पग धरि आओगे।
राम सों कहत पदमाकर पुकारी तुम,
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
सांचो हैं कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥ १॥

जोग जप संध्या साधु साधन सबैइ तजे,
कीन्हे अपराध ते अगाध मन भावते।
ते ते तजि औगुन अनंत पदमाकर तौ,
कौन गुन लेके महाराजहि रिझावते।
जैसे अब तैसे पै तिहारे बडे काम के हैं,
नाहीं तो न एते बैन कबहूँ सुनावते।
पावते न मोसों जोपै अधम कहूँ तो राम,
कैसे तुम अधम उधारन कहावते॥ २॥

बोधसार

आस बस डोलत सु या को बिसबास कहा,

सांस बस बोले मल मांस ही को गोला है।

कहै पदमाकर बिचार छन भंगुर यों,

पानी में के फेन कैसा फलत फफोला है।

करम करोर पंच तत्त्व न वटोर जोर,

जोर के बनायो तऊ पोर पोर पोला है।

छांडि राम नाम नहिं पैहै बिसराम अरे,

निपट निकाम तन चाम ही को चोला है॥

❀ ❀ ❀

तृष्णातरङ्ग

एकन सों बैर करि प्रीति करि एकन सों,

एकन सों बैर है न प्रीत कछू गाढी है।

कहै पदमाकर न होत चित चाही बात,

बात करिबे को अनचाही मीची ठाढी है।

एते पै न चेते फेर केते बांध बांधत है,

दंत लागे हिलन सपेद भई दाढी है।

बाढी कहूँ राम की न भगति हिये में देखो,

तृषना बिसासिनि या बिलई सी बाढी है॥

* * *

(दीनदयाल गिरि)

तत्त्वबोध

बचन तजै नहिं सत पुरुष तजैं प्रान बर देस।
प्रान पुत्र दुहु परिहर्यो बचन हेत अवधेस ॥ १ ॥
जनम लियो हरि भजन को दियो बिषै में खोय।
गयो लैन पायो न गज आयो पंगुल होय ॥ २ ॥
हिय में हरि हर्यो नहीं हेरत फिर्यो जहान।
ज्यौं निज में मृग भूलि मद खोजत फिर्यो अजान ॥ ३ ॥
चिद हरि तैं लीला करै जग जड को संदोह।
ज्यौं चुंबक परताप तैं करत क्रिया जड लोह ॥ ४ ॥

प्रभु प्रेरक सब जगत को नट नागर गोबिन्द।
ज्यौं नट पट के ओट ह्वै नटी नचावत वृंद ॥ ५ ॥
एकै सब ही में बस्यो बासुदेव करि बास।
ज्यौं घट मठ भीतर बहिर बूझ्यौ एक अकास ॥ ६ ॥
सबै काम सुधरैं जबै करैं कृपा श्रीराम।
जैसे कृषी किसान की उपजावैं घनस्याम ॥ ७ ॥
जैसे जल लै बाग को सिंचत मालाकार।
तैसे निज जन को सदा पालत नंदकुमार ॥ ८ ॥
सील सुमति सरधा बिना बुध सङ्ग सठ सुधरैं न।
होहिं न सुजन पिसाच गन शिवहि सेइ दिन रैन ॥ ९ ॥
साधु रहैं नहिं सकल थल कवि जन कहैं बखानि।
बन बन चंदन होंहि नहिं गिरि गिरि मानिक खानि ॥१०॥

* * *

दीन के मोती

रचैं सठहि बुध आप सम बैन सुनाय अनूप।
जैसे भृंगी कीट को करत सैन निज रूप ॥ १ ॥
सठ सुधरैं सत सङ्ग तैं गये बहुत बुध भाखि।
जैसे मलय प्रसङ्ग तैं चंदन होहिं कुसाखि ॥ २ ॥
भाग्य फलति है सकल थल नहिं बिद्या बल बांह।
पायो श्री अरु गरल को हरिहर नीरधि मांहि ॥ ३ ॥
बिश्वासी के ठगन मैं नहीं निपुनता होय।
कहौ सूरता तासु हनि रह्यौ गोद जो सोय ॥ ४ ॥

लखियत कोइ वस्तु जग बिना चाह मिलि जाय।
अचरज गति बिधि की जथा काक तालिका न्याय ॥ ५ ॥
निरबल जुगल मिलाय करि काज कठिन बनि जाय।
अंध कंध पर बैठि करि पंगु यथा फल खाय ॥ ६ ॥
गहैं दीन गुन हीन प्रभु नहिं गरबी गुन पूर।
छोडि केतकी कुसुम को हर शिर धरे धतूर ॥ ७ ॥
कांचे घट में जल जथा स्रवित होत अति जाय।
जाचक को कुल सील गुन बिद्या तथा घटाय ॥ ८ ॥
जो मन प्रिय सो प्रिय लगै गुन अरु रूप बिहीन।
त्यागि रतन हर जतन सों पन्नग भूषण कीन ॥ ९ ॥
पराधीनता दुख महा सुख जग में स्वाधीन।
सुखी रमत सुक बन विषैं कनक पींजरे दीन ॥१०॥
धनी सुखी नहिं तोष बिन तुष्ट निधन सुखवान।
नृप सुखहित पचि पचि मरैं मन मुनि मोद महान ॥११॥
जग दुख को दारन करैं साधक लहि सत संग।
पाय जडीबल नकुल ज्यौं नासै भीम भुजंग ॥१२॥
भाषत धीर सरीर को नहीं छनक इतबार।
ज्यौं तरु सरिता तीर को गिरत न लागै बार ॥१३॥
चलिबो है चेते न जग भूल्यो देखि समाज।
जैसे पथिक सराय परि रचै सयन के साज ॥१४॥

पुलकित होंहिं प्रबीन सुनि बुध बानी न अजान ।
ससि मयूख तें चन्द्रमणि द्रवै न कठिन पखान ॥१५॥
सरल सरल तैं होय हित नहीं सरल अरु बंक ।
ज्यौं सर सूधहि कुटिल धनु डारै दूर निसंक ॥१६॥
नेह सारखी रजु नहीं कविवर करै बिचार ।
बारिज बंध्यो मिलिन्द लखि दार बिदारनिहार ॥१७॥
मलिन पिता के बिमल सुत उपजत नाहिं सन्देह ।
होत पंक ते पद्म है पावन परमा गेह ॥१८॥

* * *

प्रेम

रसना अहि की गहिवी सुगमै,
बन कंटक गौन उबाहनो है।
गिरि तें गिरिबो भिरिबो गज तें,
तिरिबो बडवागि को थाहनो है॥

रन एक अनेकनि तें जु लरै,
तिमि ताहि न सूर सराहनो है।
हित दीनदयाल महा मृदु है,
कठिनो अति अन्त निबाहनो है॥

पछ लत्त तुरीन के हैं सुगमै,
नख नाहर को हठि गाहनो है।
विष नीर की पीर को धीर सहै,
चढ़ि चीर सरीरहि दाहनो है॥
मरु कूप के बीच फसै सुगमै,
बरु मीच तें बैर बिसाहनो है।
हित दीनदयाल महा मृदु है,
कठिनो अति अन्त निबाहनो है॥

(महाराज रघुराजसिंह)

प्रतिज्ञा भङ्ग

अर्जुन थाक्यो समर मझारी ।।
गहत बनत नहिं धनुष विशिखकर,
सूख्यो मुख श्रम भारी ।
भीषम शर पंजर महँ परिकै,
निज बिक्रमहिं बिसारी ।।
भयो अचल निज रथ पर पारथ,
मानि लई हिय हारी ।
कांपत बदन बचन नहिं निकसत,
आंखि न सकत उघारी ।।

भूली पूरब केरि प्रतिज्ञा,
जो निज बदन उचारी।
बिजय लाभ दुर्लभ उपज्यो मन,
सब बिधि भई लचारी॥
श्री रघुराज अधार एक अब,
देखि परत गिरधारी॥
भीषम शर छन छन अधिकात॥
मूंदे पारथ सारथि रथ युत,
तुरङ्ग नहीं दरसात॥
बार बार हरि दाबत रथ को,
तबहुँ उड़ो जनु जात।
ताजन हूँ बाजिन तन लागत,
पै न बेग सरसात॥
बागहु छूटि गई हरि कर सों,
नहिं कपिध्वज फहरात।
मुरछित परे चक्र रक्षक दोउ,
लहे विशिख उर घात॥
करत बनत नहिं तहँ प्रभु सों कछु,
कौरव सब मुसक्यात।
श्री रघुराज भक्त प्रण पालन,

मानहुं कछु न बसात ॥
हरि हरबर सुअवसर जानि ।
तज्यो पारथ को तुरत रथ,
चुकत दल निज मानि ॥
देवव्रत पर द्रुतहि दौरत,
छबि न जात बखानि ।
भोगि भोग समान भुज,
ऊरध उठयौ छबि खानि ॥
परम परकाशित सुदर्शन,
लसत मंजुल पानि ।
मनु मनाल सरोज पर,
रवि बैठि आसन ठानि ॥
बजत मृदु मंजीर पद,
प्रिय पीतपट फहरानि ।
समर रजरंजित रुचिर कछु,
अलक मुख बिथुरानि ॥
छोनि लों पट छोर छहरत,
गहत युगल भुजानि ।
मनहुं माधव हरत महि की,
भूरि भार गलानि ॥

मर्‌यो भीषम मर्‌यो भीषम,
कढत दोउ दल बानि।
तजत नहिं कोउ बीर शर,
धनु रहे निज निज तानि॥
नैन नेसुक अरुण राजत,
मंद गति दरशानि।
जात ज्यों गजराज पर,
मृगराज अमरष आनि॥
कौन द्वितिय दयाल जन हित,
तजै जो निज बानि।
कृष्ण पै यदुराज मति गति,
बार बार बिकानि॥

❀ ❀ ❀

हिन्दीविलास

तृतीय तरंग

हरिश्चन्द्र-सुभद्राकुमारि चौहान

(हरिश्चन्द्र)

गङ्गावर्णन

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति ।
बिच बिच छहरति बूंद मध्य मुक्तामनि पोहति ।।
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत ।
जिमि नर गन मन बिविध मनोरथ करत मिटावत ।।
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत ।
दरसन मज्जन पान त्रिबिध भय दूर मिटावत ।।
श्री हरिपद नख चन्द्रकान्त मन द्रवित सुधारस ।
ब्रह्म कमण्डल मण्डल भव खण्डन सुर सरबस ।।
शिव सिर मालति माल भगीरथ नृपति पुण्य बल ।

ऐरावत गज गिरिपति हिम नग कण्ठहार कल ॥
सगर सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेद्यो जग धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥
कहूँ बंधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत।
कहुँ छतरी कहुं मढी बढ़ी मनमोहत जोहत ॥
धवल धाम चहुं ओर फरहरत धुजा पताका।
घहरत घण्टा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥
मधुरी नौबत बजत कहूँ नारी नर गावत।
बेद पढ़त कहुं द्विज कहुं जोगी ध्यान लगावत ॥
कहुं सुन्दरी नहात नीर कर जुगल उछारत।
जुग अम्बुज मिलि मुक्त गुच्छ मनु सुच्छ निकारत ॥
धोवत सुन्दरि बदन करन अति ही छबि पावत।
बारिधि नाते ससि कलंक मनु कमल मिटावत ॥
सुन्दरि ससि मुख नीर मध्य इमि सुन्दर सोहत।
कमल बेलि लहलही नवल कुसुमन मन मोहत ॥
दीठि जहीं जहं जात रहत तितहीं ठहराई।
गंगा छवि हरिचन्द कछू बरनी नहिं जाई ॥

* * *

कालिन्दी सुषमा

तरनि तनूजातट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहुँ सुहाये।।
किधौं मुकुर मैं लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा।।
मनु आतप बारन तीर को सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि सेवा हित नै रहे निरखि नैन मन सुख लहत।।१।।
कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहुं भाँतिन।
कहुं सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन।।
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा।

कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा ॥
कै करिकै कर बहु पीय कों टेरत निज ढिग सोहई ।
कै पूजन को उपचार लै चलति मिलन मनमोहई ॥२॥
कै पियपद उपमान जानि एहि निज उर धारत ।
कै मुख करि बहु भृङ्गन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै ब्रजतियगन बदन कमल की झलकत झांई ।
कै ब्रज-हरि-पद-परस-हेत कमला बहु भाई ॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ ब्रज मण्डल बगरे फिरत ।
कै जानि लच्छमी भौन एहि करि सतधा निज जल धरत ॥३॥
तिन पै जेहि छिन चन्द जोति राका निसि आवति ।
जल में मिलिकै नभ अवनी लौं तान तनावति ॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल इक ओभा ।
तन मन नैन जुडात देखि सुन्दर सो सोभा ॥
सो को कवि जो छवि कहि सकै ता छन जमुना नीर की ।
मिलि अवनि और अंबर रहत छबि इकसी नभ तीर की ॥४॥
परत चन्द्र प्रतिविम्ब कहूँ जलनिधि चमकायो ।
लोल लहर लहि नचत कबहुं सोई मन भायो ॥
मनु हरि दरसन हेत चन्द जल बसत सुहायो ।
कै तरङ्ग कर मुकर लिये सोभित छवि छायो ॥
कै रास रमन में हरि मकुट आभा जल दिखरात है ।

कै जल उर हरि मूरति बसति वा प्रतिबिम्ब लखात है ।।५।।
कबहुँ होत सत चन्द कबहुं प्रगटत दुरि भाजत ।
पवन गवन बस बिम्बरूप जल में बहु साजत ।।
मनु ससि भरि अनुराग जमुन जल लोटत डोलै ।
कै तरङ्ग की डोर हिंडोरन करत कलोलै ।।
कै बालगुडी नभ मैं उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत डोलत कोऊ ब्रज रमनी जल आवती ।।६।।
कूजत कहूँ कल हंस कहूँ मज्जत पारावत ।
कहुँ कारंडव उड़त कहूं जलकुक्कुट धावत ।।
चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत ।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत ।।
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु रोर बिबध पच्छी करत ।
जलयान न्हान करि सुख भरे तट सोभा सब जिय धरत ।।७।।
कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई ।
उज्जल झलकत रजत सिढी मनु सरस सुहाई ।।
पियके आगम हेत पांवडे मनहुँ बिछाये ।
रत्न रासि करि चूर कूल में मनु बगराये ।।
मनु मुक्त मांग सोभित भरी श्याम नीर चिकुरन परसि ।
सत गुन छायो कै तीर में ब्रज निवास लखि हिय हरसि ।।८।।

देशभक्त के आंसू

रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सब के पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सब के पहिले जेहि सभ्य बिधाता कीनो॥
सब के पहिले जो रूप रङ्ग रस भीनो।
सब के पहिले विद्या फल निज गहि लीनो॥
अब सब के पीछे सोई परत लखाई।
हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ १॥
जहँ भये शाक्य हरिचन्दरु नहुष ययाती।
जहँ राम युधिष्ठिर बासुदेव सर्याती॥

जहँ भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहँ रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहँ देखहु तहँ दुःखहि दुःख दिखलाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ २॥
लरि बैदिक जैन डुबाई पुस्तक सारी।
करि कलह बुलाई जवन सैन पुनि भारी॥
तिन नासी बुधि बल विद्या धन बहु बारी।
छाई अब आलस कुमति कलह अंधियारी॥
भये अन्ध पङ्गु सब दीन हीन बिलखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ३॥
अङ्गरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै महंगी काल रोग बिस्तारी।
दिन दिन दूने दुख ईस देत हा हा री॥
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥ ४॥

कोमल भावना

रहैं क्यों एक म्यान असि दोय ।

जिन नयनन में हरिरस छायो तेहि क्यों भावै कोय ।।

जा तन मन मैं रमि रहे मोहन तहां ज्ञान क्यों आवै ।

चाहो जितनी बात प्रबोधो ह्यां—को जो पतियावै ।।

अमृत खाइ अब देखि इनारुनि को मूरख जो भूलै ।

हरीचन्द ब्रज तो कदली बन काटो तो फिरि फूलै ।।

❋ ❋ ❋

निराशा

सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ।।
अब सुख सूरज को उदय नहीं इत ह्वै है।
सो दिन फिर इत अब सपने हूँ नहिं ऐहै ।।
स्वाधीनपनो बल धीरज सबहिं नसैहै।
मंगलमय भारत भुव मसान ह्वै जैहै ।।
दुख ही दुख करिहै चारहुं ओर प्रकासा।
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा ।। १ ।।

इत कलह बिरोध सबन के हिय घर करिहै ।
मूरखता को तम चारहुँ ओर पसरिहै ॥
वीरता एकता ममता दूर सिधरिहै ।
तजि उद्यम सब ही दास वृत्ति अनुसरिहै ॥
ह्वै जैहैं चारहु बरन शूद्र बनि दासा ।
अब तजहु बीर बर भारत की सब आसा ॥ २ ॥

ह्वैहैं इत के सब भूत पिशाच उपासी ।
कोऊ बनि जैहैं आपहुँ स्वयं प्रकासी ॥
नसि जैहैं सगरे सत्य धर्म अविनासी ।
निज हरि सो ह्वैहैं विमुख भरत भुववासी ॥
तजि सुपथ सबहि जन करिहैं कुपथ बिलासा ।
अब तजहु बीरवर भारत की सब आसा ॥ ३ ॥

अपनी वस्तुन कह लखि हैं सबहिं पराई ।
निज चाल छोड़ गहिहैं औरन की धाई ॥
तुरकन हित करिहैं हिन्दू सङ्ग लराई ।
यवनन के चरनहिं रहिहैं सीस चढ़ाई ॥
तजि निज कुल करि हैं नीचन सङ्ग निवासा ।
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा ॥ ४ ॥

रहे हमहुं कबहुं स्वाधीन आर्य बलधारी।
यह दैहैं जिय सों सब ही बात बिसारी॥
हरि बिमुख धरम बिनु धन बल हीन दुखारी।
आलसी मन्द तन छीन छुधित संसारी॥
सुख सो सहिहैं सिर यवन पादुका त्रासा।
अब तजहु बीरबर भारत की सब आसा॥ ५॥

सूक्तिसुमन

प्रारम्भ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं॥
धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम तें टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त में ते सिद्ध सब कारज करैं॥१॥

का सेसहिं नहिं भार? पै धरती देत न डारि।
कहा दिवसमनि नहिं थकत? पै नहिं रुकत विचारि॥
सज्जन ताको हित करत जेहि किय अंगीकार।
यहै नेम सुकृतीन को, निज जिय करहु विचार॥२॥

जो दूजे को हित करै तौ खोवै निज काज।
जौ खोयो निज काज तौ कौन बात को राज?
दूजे ही को हित करै तौ वह परबस मूढ़।
कठ पुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुँ न कूढ़ ॥३॥

* * *

लक्ष्मी

क्रूर सदा भाखति पियहि
चंचल सहज सुभाव ।
नर गुन औगुन नहिं लखति
सज्जन खल सम भाव ।।
डरति सूर सों, भीरु कहँ
गनति न कछु रतिहीन ।
बारनारि अरु लच्छमी
कहौ कौन बस कीन ।।

❀ ❀ ❀

गुरुवश्यता

अब लौं बिगरै काज नहिं
तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ
गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥

तासों सदा गुरु-वाक्य-बस
हम नित्य पर-आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से सन्त जन ही
जगत में स्वाधीन हैं॥

* * *

शारदी सुषमा

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन में फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जामैं लखौ गूंजि गूंजि रस लेत॥
बसन चांदनी, चन्दमुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधुहास, यह सरद किधौं नव बाल॥
अहो यह सरद सम्भु ह्वै आई।
कास फूल फूले चहुँ दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई॥

चन्द उदित सोइ सीस अभूषन सोभा लगति सुहाई।
तासों रंजित घन पटली सोइ मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहंस सोभा सोइ मानों हासविभव दरसाई॥
अहो यह सरद सम्भु बनि आई॥

* * *

सेवाधर्म

नृप सों, सचिव सों, सब मुसाहेब गनन सों डरते रहौ।
पुनि बिटहु जे अति पास के तिनको कह्यौ करते रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवसनिसि, भय रहत संकित प्रान है।
निज-उदर-पूरन-हेतु सेवा श्वान-वृत्ति समान है॥
सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं। पराधीन सपने सुख नाहीं॥
जे ऊँचे पद के अधिकारी। तिनको मनहीं मन भय भारी॥
सब ही द्वेष बड़न सों करहीं। अनुछिन कान स्वामि को भरहीं॥
जिमि जे जनमैं ते मरैं, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊँचे चढे, गिरिहैं संसय नाहिं॥

❀ ❀ ❀

पुराना उद्यान

नसे बिपुल नृप-कुल-सरिस बड़े बड़े गृहजाल।
मित्रनास सों साधुजन हिय सम सूखे ताल॥
तरुवर भे फलहीन जिमि बिधि बिगरे सब नीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि मति लहि मूढ कुनीति॥
तीछन परसु प्रहार सों कटे तरोवर गात।
रोअत मिलि पिण्डूक सँग ताके घाव लखात॥
दुखी जानि निज मित्र कहँ अहि मनु लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरुब्रन पास॥
तरुगन को सूख्यौ हियौ छिदे कीट सों गात।
दुखी पत्र फल छांह बिनु, मनु मसान सब जात॥

* * *

उद्बोधन

जागो जागो रे भाई ।

सोअत निसि बैस गँवाई । जागो जागो रे भाई ॥

निसि की कौन कहै दिन बीत्यौ कालराति चलि आई ॥

देखि परत नहिं हित अनहित कछु परे बैरि बस आई ॥

निज उद्धार पन्थ नहिं सूझत सीस धुनत पछिताई ॥

अबहूँ चेति पकरि राखौ किन जो कछु बची बड़ाई ॥

फिर पछिताये कछु नहिं ह्वै है रहि जैहौ मुँह बाई ॥

❀ ❀ ❀

(बदरीनारायण चौधरी)

विजयी भारत

जय जय भारत भूमि भवानी ।

जाकी सुयश पताका जग के,
दसहूँ दिसि फहरानी ।
सब सुख सामग्री पूरित ऋतु,
सकल समान सोहानी ॥

जाकी सोभा लखि अलका अरु,
अमरावती खिसानी ।
धर्मसूर जित उयो नीति जहँ,
गई प्रथम पहिचानी ॥

सकल कला गुन सहित सभ्यता,
जहँ सो सबहिं सुभानी।
भये असंख्य जहां जोगी तापस,
ऋषिवर मुनि ज्ञानी॥

बिबुध विप्र बिज्ञान सकल विद्या,
जिनतें जग जानी।
जग विजयी नृप रहे कबहुँ जहँ,
न्याय निरत गुन खानी॥

जिन प्रताप सुर असुरन हू की,
हिम्मत बिनसि बिलानी।
कालहु सम अरि तृन समझत,
जहँ के छत्री अभिमानी॥

बीर बधू बुध जननि रहीं,
लाखन जित सती सयानी।
कोटि कोटि जित कोटिपती,
रत बनिक बनिक धनदानी॥

सेवत शिल्प यथोचित सेवा,
सूद्र समृद्धि बढानी।
जाको अन्न खाय ऐंडति जग,
जाति अनेक अघानी॥

जाकी सम्पति लुटत हजारन,
बरसन हूँ न खोटानी।
सहस सहस बरिसन दुख नित,
नव जो न ग्लानि उर आनी॥

धन्य धन्य पूरब सम जग,
नृप गन मन अजहुँ लोभानी।
प्रनमत तीस कोटि जन,
अजहूँ जाहि जोरि जुग पानी॥

जिनमैं झलक एकता की,
लखि जग मति सहमि सकानी।
ईस कृपा लहि बहुरि प्रेम घन,
बनहु सोई छवि छानी॥

सोइ प्रताप गुनजन गर्वित ह्वै,
भरी पुरी धन धानी॥

❋ ❋ ❋

(प्रतापनारायण मिश्र)

ज़नम के ठगिया

साधो मनुवां अजब दिवाना ।

माया मोह जनम के ठगिया,
तिनके रूप भुलाना ।
छल परपंच करत जग धूनत,
दुख को सुख करि माना ।

फिकिर तहां की तनिक नहीं है,
अंत समय जहँ जाना ।।
मुख ते धरम धरम गोहरावत,
करम करत मन माना ।।

जो साहब घट घट की जानै,
तेहिं तैं करत बहाना।
तेहि ते पूछत मारग घर को,
आपहि जौन भुलाना॥

'हियाँ कहाँ सज्जन कर बासा',
हाय न इतनो जाना।
यहि मनुवां के पीछे चलिकै,
सुख का कहां ठिकाना॥

जो परताप सुखद को चीन्हे,
सोई परम सयाना॥

❀ ❀ ❀

अपने करम आपने संगी

जागो भाई जागो रात अब थोरी ।

काल चोर नहिं करन चहत है,

जीवन धन की चोरी ।

औसर चूके फिरि पछितैहो,

हाथ मींजि सिर फोरी ॥

काम करो नहिं काम न ऐहैं,

बातें कोरी कोरी ।

जो कछु बीती बीत चुकी सो,

चिन्ता ते मुख मोरी ॥

आगे जामें बनै सो कीजै,
करि तन मन इक ठौरी।
कोऊ काहु को नहिं साथी,
मात पिता सुत गोरी॥

अपने करम आपने संगी,
और भावना भोरी।
सत्य सहायक स्वामि सुखद से,
लेहु प्रीति जिय जोरी॥

नाहु तु फिर 'परतापहरी',
कोऊ बात न पूछिहि तोरी॥

❀ ❀ ❀

(नाथूराम शंकर)

मङ्गलकामना

द्विज वेद पढ़ैं सुविचार बढ़ैं,
बल पाय चढ़ैं सब ऊपर को।
अविरुद्ध रहैं ऋजु पन्थ गहैं,
परिवार कहैं वसुधा भर को॥

ध्रुवधर्म धरैं पर दुःख हरैं,
तन त्याग तरैं भवसागर को।
दिन फेर पिता बर दे सविता,
कर दे कविता कबि शंकर को॥१॥

विदुषी उपजैं क्षमता न तजैं,
व्रत धार तजैं सुकृती वर को।
सधवा सुधरें विधवा उबरें,
सकलंक करें न किसी घर को॥

दुहिता न बिकें कुटनी न टिकें,
कुल बोर छिकें तरसैं दर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
करदे कविता कवि शंकर को॥२॥

नृपनीति जगे न अनीति ठगे,
भ्रमभूत लगे न प्रजाधर को।
झगड़े न मचें खल खर्व लचै,
मद से न रचैं भट संगर को॥

सुर भी न कटें न अनाज घटें,
सुख भोग डटें डपटें डर को।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
कर दे कविता कवि शंकर को॥३॥

महिमा उमड़े लघुता न लड़े,
जडता जकड़े न चराचर को।
शठता सटके मुदिता मटके,
प्रतिभा भटके न समादर को॥

बिकसे विमला शुभ कर्मकला,
पकड़े कमला श्रम के कर को ।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
कर दे कविता कवि शंकर को ॥४॥

मत जाल जलें छलिया न छलें,
कुल फूल फलें तज मत्सर को ।
अघदम्भ दबें न प्रपञ्च फबें,
गुन मान नवें न निरक्षर को ॥

सुमरे जप से निरखें तप से,
सुर पादप से तुझ अक्षर को ।
दिन फेर पिता वर दे सविता,
कर दे कविता कवि शंकर को ॥५॥

* * *

शंकर मिलन

मैं समझता था कहीं भी कुछ पता तेरा नहीं ।

आज शङ्कर तू मिला तो अब पता मेरा नहीं ।।

अबलों न चले उस पद्धति पै,

जिस पै व्रतशील विनीत गये ।

वह आज अचानक सूझ पड़ी,

भ्रम के दिन बाधक बीत गये ।।१।।

प्रभु शंकर की सुधि साथ लगी,

मुख मोड़ हठी विपरीत गये ।

चलते चलते हम हार गये,

पर पाय मनोरथ जीत गये ।।२।।

❀ ❀ ❀

रसावहान क लिये कविता वृथा है

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में,
छिति को छिगुनी पर धारिबो है।
बंधिबो है मृणाल सों मत्त करी,
जुही फूल सों शैल बिदारिबो है॥
गनिबो है सितारन को कवि शंकर,
रेणु सों तेल निकारिबो है।
कविता समुझाइबो मूढन को,
सविता गहि भूमि पै डारिबो है॥

❀ ❀ ❀

अन्ध जगत्

बोझ लदे हय हाथिन पै,
खर खात खड़े नित जाय खुजाये।
बन्धन में मृगराज पड़े,
शठ स्यार स्वतन्त्र पुकारत पाये॥
मानसरोवर में बिहरें बक,
शंकर मार मराल उड़ाये।
मान घटो गुरु लोगन को,
जग बंचक पामर पंच कहाये॥

❀ ❀ ❀

पितृदेव क्या थे और मैं क्या हूं ?

१

क्या शंकर, प्रतिकूल काल का अन्त न होगा ?

क्या मंगल से मेल मृत्युपर्यन्त न होगा ?

क्या अनुभूत दरिद्र-दुःख अब दूर न होगा।

क्या दाहक दुर्दैव-कोप कर्पूर न होगा ।।

२

होकर मालामाल पिता ने नाम किया था।

मैंने उनके साथ न घर का काम किया था।

विद्या का भरपूर अटल अभ्यास किया था।

पर औरों की भांति न कुछ भी पास किया था ।।

३

जीवन का फल पूज्य पिता जी पाय चुके थे।
कर पूरे सब काम कुलीन कहाय चुके थे॥
सुन्दर-स्वर्ग समान विलास बिसार चुके थे।
हम सब उनका अन्त अनन्त निहार चुके थे॥

४

बांध बाप की पाग बना मुखिया घर का मैं।
केवल परमाधार रहा कुनवे भर का मैं।
सुख से पहली भांति निरंकुश रहता था मैं।
क्या करता है कौन न कुछ भी कहता था मैं॥

५

जिनका संचित कोश खिलाया खाया मैंने।
करके उनकी होड़ न द्रव्य कामाया मैंने॥
लूट रहे थे लोग न छल पहचाना मैंने।
घाटे का परिणाम कठोर न जाना मैंने॥

६

अटके डिगरीदार किसी ने दाम न छोड़े।
छीन लिये धन धाम ग्राम, आराम न छोड़े॥
हाय किसी के पास विभूषण वस्त्र न छोड़े।
नाम रहा निरुपाधि पुलिस ने शास्त्र न छोड़े॥

७

बैठ रहे मुख मोड़ पुराने आने वाले ।
लेते नहीं प्रणाम लूट कर खाने वाले ॥
देते हैं दुर्वाद बड़ाई करने वाले ।
लड़ते हैं बिन बात अड़ी पर मरने वाले ॥

८

कविता-प्रेमी लोग न अब सत्कवि कहते हैं ।
हा ! न विज्ञ विज्ञान-गगन का रवि कहते हैं ॥
धर्म-धुरन्धर धीर नहीं गुरुजन कहते हैं ।
मुझको सब कंगाल धनी निर्धन कहते हैं ॥

९

वित्त विना विख्यात विरद विपरीत हुआ है ।
मन मेरा निःशंक महा भयभीत हुआ है ॥
कंगाली की मार पड़ी रसभंग हुआ है ।
जीवन का मग हाय विधाता तंग हुआ है ॥

१०

प्रतिभा को प्रतिवाद प्रचण्ड लताड़ चुका है ।
आदर को अपमान-पिशाच पछाड़ चुका है ॥
पौरुष का सिर नीच निरुद्यम फोड़ चुका है ।
हाय हर्ष का रक्त विषाद निचोड़ चुका है ॥

११

दरसे देश उदास, जाति अनुकूल नहीं है।
शत्रु करें उपहास, मित्र सुखमूल नहीं है॥
छूटे नातेदार किसी से मेल नहीं है।
घर में हा हा कार, खुशी का खेल नहीं है॥

१२

बालक चोखे खान पान पर अड़ जाते हैं।
खेल खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं॥
पर मनमानी वस्तु बिना बस रह जाते हैं।
हाय हमारे काढ़ कलेजे सो जाते हैं॥

१३

फूल फूल कर फूल फली फल खाने वाले।
नाना व्यंजन पाक प्रसादी पान वाले॥
दूध रसाला आदि सुधारस पीने वाले।
हाय बने हम शाक चनों पर जीने वाले॥

१४

लड़के लकड़ी बीन बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम अवश्य चला देते हैं॥
वृद्ध चचा दो तीन घार जल भर देते हैं।
मांग मांग कर छाछ महेरी भर देते हैं।

१५

छप्पर में बिन बांस घुने एरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम घने घनखण्ड पड़े हैं॥
खाट कहां ? छै सात फटे से टाट पड़े हैं।
चक्की पीसे कौन बिना भिड़ पाट पड़े हैं॥

१६

जाड़े का प्रतियोग, न उष्ण विलास मिलेगा।
गरमी का प्रतिकार न शीतल वास मिलेगा॥
घेर रही बरसात न सूखा ठौर मिलेगा।
इस खंडहर को छोड़ कहां घर और मिलेगा॥

१७

कर कर केहरिनाद बलाहक बरस रहे हैं।
अस्थिर विद्युद् दृश्य दशों दिश दरस रहे हैं॥
गदला पानी छेद छत्त से छोड़ रहे हैं।
इन्द्रदेव जी टांग त्राण की तोड़ रहे हैं॥

१८

दिया जले किस भांति तेल को दाम नहीं है।
काटें मच्छर डांस कहीं आराम नहीं है॥
टूट पड़े दीवार यहां सन्देह नहीं है।
कर दे पनियां ढार नहीं तो मेह नहीं है॥

१६

बीत गई अब रात अंधेरा दूर हुआ है।
संकट का कुल हाय न चकनाचूर हुआ है॥
आज तीसरा रुद्र रूप उपवास हुआ है।
हा! हम सब का घोर नरक में बास हुआ है॥

२०

जो जगती पर बीज पाप के बो न सकेगा।
जिसका साहस सत्य धर्म को खो न सकेगा॥
जो विधि बिपरीत कभी कुछ कर न सकेगा।
रो रो कर वह रंक कहां तक मर न सकेगा॥

❀ ❀ ❀

आत्म बोध

पठ पाठ प्रचण्ड प्रमाद भरे,
कपटी जन जन्म गमाय गये।
रण रोप भयानक आपस में,
भट केवल पाप कमाय गये।

धन, धाम बिसार धरातल में,
धनवान असंख्य समाय गये।
कवि 'शंकर सिद्धि मनोरथ की
जड शुद्ध सुबोध जमाय गये ।।१।।

उपदेश अनेक सुने मन को,
रुचि के अनुसार सुधार चुके।

धर ध्यान यथाविधि मन्त्र जपे,
पढ़ वेद पुराण विचार चुके ।
गुरु गौरव धार महन्त बने,
धन धाम कुटुम्ब बिसार चुके ।
कवि 'शंकर' ज्ञान बिना न तरे,
सब ओर फिरे झक मार चुके ॥२॥

निगमागम तन्त्र पुराण पढ़े,
प्रतिवाद प्रगल्भ कहाय खरे ।
रच दम्भ प्रपंच पसार घने,
बन वंचक वेष अनेक धरे ।
विचरे कर पान प्रमाद सुरा,
अभिमान हलाहल खाय मरे ।
कवि 'शंकर मोह महोदधि मे,
बकराज विवेक बिना न तरे ॥३॥

घर बार बिसार विरक्त बने,
ठनि वेष बनाय प्रमत्त रहैं ।
बकवाद अबोध गृहस्थ सुने,
शठ शिष्य अनन्य सुजान कहैं ।
घुस घोर घमंड महा बन में,
विचरैं कुलबोर कुपंथ गहैं ।

कवि 'शंकर एक विवेक बिना,
कपटी उपताप अनेक सहैं ॥४॥

तन सुन्दर रोगविहीन रहै,
मन त्याग उमंग उदास न हो।
मुख धर्म प्रसंग प्रकाश करे,
नर मंडल में उपहास न हो।
धन की महिमा भरपूर मिले,
प्रतिकूल मनोज विलास न हो।
कवि 'शंकर ये उपभोग वृथा,
पटुता प्रतिभा यदि पास न हो ॥५॥

दिन रात समोद विलास करें,
रस रंग भरे सुख साज बने।
शिर धार किरीट कृपाण गहें,
अवनी भर के अधिराज बने।
अनुकूल अखण्ड प्रताप रहै,
अविरुद्ध अनेक समाज बने।
कवि 'शंकर' वैभव ज्ञान बिना,
भवसागर के न जाहज बने ॥६॥

❀ ❀ ❀

(श्रीधर पाठक)

उजड़ा गांव

कबहुँ न तहां पधारि ग्राम्य जन पग अब धरिहैं।
मधुर भुलौनी माहिं नित्य चिन्ताहि बिसरिहैं॥
ना किसान अब समाचार तहँ आय सुनैहैं।
ना नाऊ की बातैं सब को मन बहलैहैं॥
लकड़हार कौ विरहा कबहुँ न तहँ सुनि परिहै।
तान श्रवन आनन्द उदधि कबहूँ न उभरिहैं॥
मां धौ पोंछि लोहार काम को तहँ रुकिहै ना।
भारी बलहि ढिलाय सुनन बातैं झुकिहै ना॥

घर कौ स्वामी आपु दीखिहै तहँ अब नाहीं ।
भाग उठे प्याले कों फिरवावत सब पाहीं ॥
धनी करहु उपहास तुच्छ मानहु किन मानी ।
दीनन की यह लघु सम्पति साधारन जानी ॥
मोंहि अधिक प्रिय लगै अधिक ही मो हिय भाई ।
सब ही बनावटनि सों एक सहज सुघराई ॥

❀ ❀ ❀

जादूभरी थैली

कै यह जादूभरी विश्व बाजीगर थैली।
खेलत में खुलि परी शैल के सिर पै फैली ॥
पुरुष प्रकृति कौं किधौं जबै जोबनरस आयौ।
प्रेम केलि रस रेलि करन रंगमहल सजायौ ॥
खिली प्रकृति पटरानी के महलन फुलवारी।
खुली धरी कै भरी तासु सिंगार पिटारी ॥
प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ॥

बिमल अम्बुसर मुकुरन महँ मुखबिम्ब निहारति।
अपनी छबि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

❀ ❀ ❀

स्वर्गीय वीणा

कहीं पै स्वर्गीय कोइ बाला,
सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत कीसी कैसी,
सुरीली गुंजार आरही है ॥१॥

हरेक स्वर में नवीनता है,
हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है औ लीनता है,
अलाप अद्भुत मिला रही है ॥२॥

अलच्य पदों से गत सुनाती,
तरल तरानों से मन लुभाती।

अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक,
सुधा की धारा बहा रही है ॥३॥
कोई पुरन्दर की किंकरी है
कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग तप्ता सी भोग मुक्ता,
हृदय के उद्गार गा रही है ॥४॥
कभी नई तान प्रेममय है,
कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है,
अनेकों बानक बना रही है ॥५॥
भरे गगन में हैं जितने तारे,
हुए हैं बदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों,
दो उंगलियों पर नचा रही है ॥६॥
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो,
सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन जोगन ये जो गगन में,
कि इतनी चुलबुल मचा रही है ॥७॥

❀ ❀ ❀

ओ घन श्याम !

हे वारिद ! नव जलधर ! हे धाराधर नाम ।
हे पयोद ! पय सुन्दर हे अतिशय अभिराम ।। १ ।।
हे प्रानद आनंद घन हे जग जीवन सार ।
हे सजीव जीवन धन हे त्रिभुवन आधार ।। २ ।।
हे घनस्याम परम प्रिय हे आनन्द घनस्याम ।
मुदित करन हरि जन हिय हे हरि तनुज मुदाम ।। ३ ।।
हे जग जीय जुड़ावन भीय छुड़ावन हार ।
हे बक तीय उड़ावन हीय बढावन हार ।। ४ ।।
हे रनबंक धनुसधर सर तरकस जलधार ।
ग्रीसम विसम कलुसहर रवि कर प्रखर प्रहार ।। ५ ।।

हे गिरि तुङ्ग शिखर चर हे निर्भय नभयान ।
हे नित नूतन तन धर हे पदवमान विमान ॥ ६ ॥
तुम भारत के धन बल गुन गौरव आधार ।
तुम ही तन तुम ही मन तुम प्रानन पतवार ॥ ७ ॥
परम पुरातन तुम्हरौ भारत संग सत प्रेम ।
जिहि जानत जग सगरौ मानत निहिचल नेम ॥ ८ ॥
सो तुमकों नहिं चहियत छांडन हित सम्बन्ध ।
अटल सदैवहि कहियत पूरन प्रकृति प्रबन्ध ॥ ६ ॥
सोचहु सुमिरि सुजस निज हे उज्ज्वल जस मौन ।
इन दुखियनहि तुमहिं तज घन अवलम्बन कौन ॥१०॥
पठवहु परम सुहावनि पावनि पूरब पौन ।
सुभ सन्देस सुनावनि जलभर लावनि जौन ॥११॥
स्याम घटा लै धावहु छावहु नभहि दबाय ।
दिव्य छटा फैलावहु लावहु दलहि सजाय ॥१२॥
घोरहु घुमड़ि घमंकहु घेरहु दसहु दिसान ।
दामिनि द्रुतहि दमंकहु धाइहु धनुस निसान ॥१३॥
गरजन गहन सुनावहु रनव्रत वीर समान ।
लरजन ललित दिखावहु बांधहु धुर धुरवान ॥१४॥
मुग्ध मयूर नचावहु निज घन घोर सुनाय ।
दादुर भेक बुलावहु नव अभिषेक कराय ॥१५॥

कहुँ कहुँ कड़कि सुनावहु बिज्जु पतन ठनकार ।
कहुँ मृदु श्रवन करावहु झिल्लीगन झनकार ॥१६॥
बन बन कीट पतङ्गन घर घर तिय गन तान ।
पुरवहु रङ्ग विरङ्गन हे बहु ढङ्ग निधान ॥१७॥
करि कृत कृत्य किसानन सम्बत सर सरसाउ ।
सींचि सस्य तृन धानन तब निज धाम सिधाउ ॥१८॥
समै समै पुनि आवहु पुनि जावहु इहि रीति ।
सहज सुभाग बढावहु गहि मग प्राकृत नीति ॥१९॥
प्रथित प्रेम रस पागहु पूरन प्रनय प्रतीत ।
सदा सरस अनुरागहु हे घन ! विनय विनीत ॥२०॥

(बालमुकुन्द गुप्त)

श्रीराम स्तोत्र

अब आये तुम्हरी सरन 'हारे के हरि नाम'।
साख सुनी रघुवंशमणि 'निर्बल के बल राम' ॥
जप बल तपबल बाहुबल चौथे बल है दाम।
हमरे बल एकौ नहीं पाहि पाहि श्रीराम ॥
सेल गई बरछी गई गये तीर तलवार।
घड़ी छड़ी चसमा भये छत्रिन के हथियार ॥
जो लिखते अरि हीय पै सदा सेल के अंक।
झपत नैन तिन सुतन के कटत कलम को डंक ॥

कहां राज कहँ पाट प्रभु कहां मान संमान।
पेट हेत पायन परत हरि तुम्हरी संतान॥
जिनके करसों मरन लौं छुट्यो न कठिन कृपान।
तिनके सुत प्रभु पेट हित भये दास दरबान॥
जहां लरैं सुत बाप संग और भ्रात सो भ्रात।
तिनके मस्तक सों हटै कैसे पर की लात॥
बार बार मारी परत बारहिं बार अकाल।
काल फिरत नित सीस पै खोले गाल कराल॥
अब तुम सों बिनती यहै राम गरीब नेवाज।
इन दुखियन अँखियान महँ बसै आपको राज॥
जहं मारी को डर नहीं अरु अकाल को त्रास।
जहां कौ सुख सम्पदा बारह मास निवास॥
जहां प्रबल को बल नहीं अरु निबलन की हाय।
एक बार सो दृश्य पुनि आंखिन देहु दिखाय॥
अब लों हम जीवित रहे लै लै तुम्हरो नाम।
सोहू अब भूलन लगे अहो राम गुन धाम॥
कर्म धर्म संयम नियम जप तप जोग बिराग।
इन सब को बहु दिन भये खेलि चुके हम फाग॥
धन बल जन बल बाहु बल बुद्धि विवेक बिचार।
तान मान मरजाद को बैठे जूआ हार॥

हमरे जाति न बर्न है नहीं अर्थ नहिं काम।
कहा दुरावैं आप से हमरी जाति गुलाम ॥
बहु दिन बीते राम प्रभु खोये आपनो देस।
खोवत हैं अब बैठि के भाषा भोजन भेस ॥
नहीं गांव मैं झूपड़ो नहिं जंगल में खेत ।
घर ही बैठे हम कियो अपनो कंचन रेत ॥
दो दो मूठी अन्न हित ताकत पर मुख ओर।
घर ही में हम पारधी घर ही में हम चोर ॥
तौ हू आपस में लड़ैं निसि दिन स्वान समान।
अहो कौन गति होयगी आगे राम सुजान ? ॥
बिप्रन छोड्यो होम तप अरु छत्रिन तरवार।
बनिकन के पुत्रन तज्यो अपनो सद् व्यवहार ॥
अपनो कछु उद्यम नहीं तकत पराई आस।
अब या भारत भूमि में सबै बरन हैं दास ॥
सबै कहैं तुम हीन हो हमहु कहैं हम हीन।
धक्का देत दिनान को मन मलीन तन छीन ॥
कौन काज जनमत मरत पूछत जोरे हाथ।
कौन पाप यह गति भई हमरी रघुकुलनाथ ॥

❀ ❀ ❀

(अयोध्यासिंह उपाध्याय)

वीरवर सौमित्र

कर करवाल लिये रण भू में निधरक आना।
बिध कर विशिखादिक से पग पीछे न हटाना ॥
लख कर रुधिर प्रवाह और उत्तेजित होना।
रोम रोम छिद गये न दृढता चित की खोना ॥
गिरते लख करके लोथ पर लोथ देख शिर का पतन।
नहिं विचलित होना अल्प भी हुआ देख शतखण्ड तन ॥१॥

तोपों का लख अग्निकाण्ड चित शंक न लाना।
न कांपना लख शिर पर से गोलों का आना ॥

भिड़ना मत्त गयन्द संग केहरि से लड़ना।
कर द्वारा अति क्रुद्ध व्याल को दौड़ पकड़ना॥
लख काल वदन विकराल भी त्याग न देना धीरता।
अकले भिड़ना भट विपुल से यदपि है बड़ी वीरता॥२॥

किन्तु वीरता उच्च कोटि की और कई हैं।
कल्पित वीरताओं से जो वर कही गई हैं॥
करना स्वार्थ त्याग क्रोध मे विजित न होना।
विपतकाल औ कठिन समय में धैर्य न खोना॥
ऐसी ही कितनी और हैं द्वितीय भांति की वीरता।
जिनमें न चाहिये विपुलबल और न वज्र शरीरता॥३॥

रामानुज में द्विविध वीरता है दिखलाती।
समय समय पर जो चित को है बहुत लुभाती॥
पति बन जाता देख सिया थी जब अकुलाई।
सुत वियोग वश जब कौसल्या थी बिलखाई॥
उस काल सुमित्रा सुअन ने जो दिखलाया आत्मबल।
वह उनके कीर्तिनिकेत का कलित खंभ है अति अचल॥४॥

तजा उन्होंने राजभवन सुख सुर उर ग्राही।

तजी सुमित्रा सदृश जननि सब भांति सराही ॥
आह न जिसका विरह कभी जन सम्मुख आया ।
तजी ऊर्मिला जैसी परम सुशीला जाया ॥
पर बालप्रीति की डोरी में बन्धे भायपरंग में रंगे ।
वह तज न सके प्रिय बन्धु को विपिन गये पीछे लगे ॥५॥

यों उनका तिय जननि राजसुख को तज जाना ।
यतीभाव से वन में चौदह बरस बिताना ॥
राम सिया को मान पिता माता औ स्वामी ।
वन में सह दुख विपुल बना रहना अनुगामी ॥
संसार चकित कर कार्य है मिलित मनोरम धीरता ।
है यही आत्मबल संभवा परम अलौकिक वीरता ॥६॥

कुसुम चयन करते अलकावलि बीच लगाते ।
जब सीता सँग विविध केलिरत राम दिखाते ॥
उसी काल सौमित्र रुचिर उटजादि बनाते ।
कर्तन करते मंजुशालशाखा दिखलाते ॥
सो किसलय पर जो यामिनी राम बिताते सुमुखि सह ।
वह निशि व्यतीत करते लखन नखतावलि गिन सजग रह ॥७॥

कभी जानकी पट भूषण पेटिका लिये कर ।

वे दिखला पड़ते चढ़ते गिरि दुरारोह पर ॥
लता बेलि काटते कटीले तरु छिनगाते ।
सुपथ बनाते गहन विपिन में कभी दिखाते ॥
पथ कभी सिय कुटी से सरसि तक का हित गमना गमन ।
चिह्नित करते वे दीखते बांध पादपों में वसन ॥८॥

यक तुषार से मलिन चन्द्रिकावती रयन में ।
जब वह थी गतप्राय बड़ी सरदी थी वन में ॥
वे थे देखे गये बारि सरसी में भरते ।
सीकरमय तृणराजि बीच बच कर पग धरते ॥
यक जलदमयी यामिनी में शिर पर जलधारादि ले ।
चूती कुटीर के काज वे तृण पत्ते लाते मिले ॥९॥

यह अति कोमल राजकुंवर कुवलय कर लालित ।
सुबरन का सा कान्तिमान सुख में प्रतिपालित ॥
कुसुम सेज पर शयन निपुण मृदु भूतलचारी ।
वर व्यञ्जन वर बसन वर विभव का अधिकारी ॥
जब कानन में था दीखता करते परम कठोर व्रत ।
तब अवगत भा जग को हुआ कितना है रामरत ॥१०॥

सुनकर धनुटंकार मेदिनी थर्राती थी ।

दिग्दन्ती की द्विगुण दलक उठती छाती थी ॥
विशिखवृन्द से नभ मण्डल था पूरित होता ॥
जो था दश दिशि बीच बहाता शोणित सोता ॥
प्रलय बह्नि थी दहकती त्रिपुरान्तक थे कोपते ।
जिस काल वीर सौमित्र थे रणभू में पग रोपते ॥११॥

अमर वृन्द जिसके भय से था थरथर कंपता ।
जो प्रचण्ड पूषण सा था रणभू में तपता ॥
पाहन द्वारा गठित हुई थी जिसकी काया ।
विविध भयङ्कर मूर्तिमती थी जिसकी माया ॥
वह परम साहसी अति प्रबल मेघनाद सा रिपुदमन ।
जिसके कोपानल में जला धन्य वह सुमित्रा सुअन ॥१२॥

कुण्ठितमति पौरुष विहीनता परवशता से ।
वे न सियामति अनुगत थे स्वारथपरता से ॥
वरन हृदय में भ्रातृभक्ति उनके थी न्यारी ।
जिसने थी मोहिनी अपर भावों पर डारी ॥
उनके जीवन हिमगिरि शिख पर अमरावति से खसी ।
राकारजनी चांदनी सी स्नेह वीरता थी लसी ॥१३॥

वे बासर थे परम मनोहर दिव्य दरसते ।

जब थे भारत मध्य लखन से बन्धु बिलसते ॥
आज कलह छल कूटकपट घर घर है फैला ।
हृदय बन्धु से बन्धु का हुआ है अति मैला ॥
हे प्रभो ! बन्धु सौमित्र से फिर उपजें गृह गृह लसें ।
शुचि चरित सुखी परिवार फिर भारत वसुधा में बसें ॥१॥

फूल और कांटा

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौधा उन्हें है पालता॥
रात में उन पर चमकता चांद भी।
एक ही सी चांदनी है डालता॥ १॥

मेह उन पर है बरसता एक सा।
एक सी उन पर हवाएँ हैं बहीं॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढङ्ग उनके एक से होते नहीं॥ २॥

छेद कर कांटा किसी की उँगलियां।
फाड़ देता है किसी का वर वसन॥

प्यार डूबी तितलियों का पर कतर।
भौंर का है बेंध देता श्याम तन॥ ३॥
फूल लेकर तितलियों को गोद में।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला॥
निज सुगन्धों औ निराले रङ्ग से।
है सदा देता कली जी की खिला॥ ४॥
है खटकता एक सबकी आंख में।
दूसरा है सोहता सुर सीस पर॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर॥ ५॥

❀ ❀ ❀

आंसू

दीन दुखियों के दुखी दिल के दुलारे आंसू।
प्रेमपथ पंथी पियारों के पियारे आंसू॥
भय से भरपूर भरे नैनों के तारे आंसू।
भक्ति से भींजे हुए मान के बारे आंसू॥
आदि कवि जू के परम तुष्ट सहारे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू॥
शोक से भय से कभी चित्त जो घबराता है।
हर्ष से या कभी हरिभक्ति से भर आता है॥
तब तू लहराके लपक आंखों में आजाता है।
दिल के सब भेद तुरत खोल के बतलाता है॥

दिल की हालत का तू देता है पता रे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू ॥

पूत की आंख में माता जो कहीं लख पावे।
दौड़ कर अपने सुअंचल में तुझे बिठलावे ॥
प्रेयसी नेत्र में आकर जो झलक दिखलावे।
हाथ प्रेमी का तुरत तुझ को सुपट पहनावे ॥

तेरा सम्मान अजब होते लखा रे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू ॥

द्रौपदी-दृग से निकल दृश्य दिखाया तू ने।
सब को मालूम है कुरु-कुल को बहाया तूने ॥
भीम को भाई ही का रक्त पिलाया तू ने।
पार्थ के हाथ अवध्यों को बधाया तू ने ॥

तू ने निज बल से बता क्या न किया रे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू ॥

मातु के नैन से गिर तूने गजब वही ढाया।
क्या कहूँ काम परशुराम से जो करवाया ॥
बार इक्कीस अ-रजपूत जगत बनवाया।
सारे संसार में जाहिर है तेरी यह माया ॥

तूने वह जोर परशुधर को दिया रे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू ॥

आदि कवि जू के सुनैनों में तू जब आया था।
'मा निषादादि' कवित मुखसे निकलवाया था॥
फिर चरित राम का प्रत्यक्त ही दरसाया था।
'बालमीकी' सा बड़ा ग्रन्थ ही बनाया था॥
मूल कविता का तुही है मेरे प्यारे आंसू।
कौन कह सकता है महिमा तेरी खारे आंसू॥

* * *

(जगन्नाथ दास 'रत्नाकर')

हरिश्चन्द्र परीक्षा

१

चलि सुरपुर सौं बिस्वामित्र अवधपुरी आए।
देखे तहां समाज साज सब सुभग सुहाए ॥
बन उपबन आराम सुखद सब भांति मनोहर।
लहलहात ह्वै हरित भरित फल फूलनि तरवर ॥

२

बिबिध गुनावन करत राजपौरी पर आए।
लखि रचना निज सृष्टि सक्ति कौ गर्व भुलाए ॥
रजत-हेम-मुकता-मय मंजुल भवन बिराजत।
बड़े बड़े मनि अच्छ खचित द्वारे इमि भ्राजत ॥

३

"टरैं चन्द सूरज औ टरहिं मेरु गिरि सागर।
टरहि न पै हरिचन्द भूप कौ सत्य उजागर" ॥
पढ़त प्रतिज्ञा साभिमान ईर्ष्या पुनि आई।
"भला देखि हैं तो" मन में कह भौंह चढ़ाई ॥

४

तब लौं दौरि पौरिया भूपहिं यह सुधि दीन्ही।
"महाराज एक ऋषिवर कृपा आज इत कीन्ही ॥"
सुनि नृप आपहिं उमगि द्वार अति आतुर आए।
करि प्रनाम पग परसि सभा में सादर ल्याए ॥

५

बैठार्यो सनमान सहित बहु विनय उचारी।
आनन्द सौं तन पुलकि उठ्यो नैननि भरि बारी ॥
सहज अकृत्रिम भाव भूप के मुनि मन भाए।
श्रद्धा सील सुभाव नम्रता हेरि हिराए ॥

६

पै बानी करि उदासीन निज परिचय दीन्ह्यौ।
"सुनहु भूप हम कौन जाहि आदर तुम कीन्ह्यौ ॥
जाके तप ब्रह्मांड तप्यौ हरि आसन डोल्यौ।
जो तप बल छत्री सौं ह्वै ब्रह्मर्षि कलोल्यौ ॥

७

कौसिक बिस्वामित्र सोई हम तव गृह आए।
सकल मही के दान लेन के चाव चढ़ाए॥
जान्यौ हमैं तथा आवन कौ कारन जान्यौ।
कह्यौ वेग अब जो बिचार उर अन्तर आन्यौ" ॥

८

कह्यौ भूप "कत जानि बूझ बूझत मुनि ज्ञानी।
या मैं सोच बिचार कहा जौ तुम यह ठानी॥
तुम सौ पाइ सुपात्र दान देवै में चूकै।
तौ यह चूक सदैव आनि उर अन्तर हूकै॥

९

लीजै मानि प्रमोद सकल महि सादर दीन्ही"।
"स्वस्ति" भाषि मुनि मन में बिबिध प्रसंसा कीन्ही॥
स्रवन सुन्यौ जैसौ तासौ बढ़ि आंखिनि देख्यौ।
सांचहिं नृप हरिचन्द अमंदचरित मुनि लेख्यौ॥

१०

सद-गुन-गन-आगार धर्म आधार लसत यह।
सांचहि परम उदार भूमि भर्तार लसत यह॥
जिहिं महि के दस हाथ हेत नृप माथ कटावैं।
रुंडह ह्वै उठि लरैं रुधिर सौं कुंड भरावैं॥

११

जिहिं हित तप करि तचैं पचैं नर स्वारथ घेरे।
सो सब तृन इव तजी नैकु तेवर नहिं फेरे ॥
अब करि कौन कुढंग भंग या कौ व्रत कीजै।
पुनि कछु गुनि बोले "अब दानप्रतिष्ठा दीजै" ॥

१२

कह्यो भूप कर जोरि "होहि इच्छा सो लीजै"
बोले ऋषिवर "सहस-स्वर्णमुद्रा बस दीजै" ॥
"जो आज्ञा" कहि नृपति बेगि मंत्रिहिं बुलवायौ।
सहस स्वर्न मुद्रा आनन-हित हरषि पठायौ ॥

१३

यह लखि ऋषि बिकराल लाल लोचन करि बोले।
भृकुटी जुगल मिलाइ किए नासापुट पोले ॥
"रे मिथ्या धर्मध्वज, मृषा सत्य अभिमानी।
धर्म धीरता पन दृढ़ता तेरी सब जानी ॥

१४

ऐसहिं तुच्छ कपट छल सौं महिमा बिस्तारी।
भयौ सकल जग में विख्यात सत्य व्रत धारी ॥
दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी।
राज कोष कौ अब तैं मूढ़ कौन अधिकारी ॥

१५

सुनि मुनिवर के परुष वचन कछु भूप सकाए।
बोले बचन निहोरि जोरि कर बिनय बसाए॥
"छमा छमा ऋषिराज दया सागर गुन आगर।
छमा छमा तप-तेज-तरनि तिहु लोक उजागर॥

१६

सांचहिं अब समुझात बात हम अनुचित कीन्ही।
मंत्रिहिं जो मुद्रा आनन की आयसु दीन्ही॥
हम अवगुन के कोस किए सब दोस तिहारे।
तुम गुन सिंधु अगाध छमहु अपराध हमारे॥

१७

जिहिं तिहिं भांति सहस्र स्वर्न मुद्रा सब दैहैं।
दारा सुअन समेत याहि ऋण हेत बिकैहैं॥
पुनि मुनि करि भ्रूबंक सहित आतंक उचार्यौ।
"रे रवि-कुल-कलंक मति-रंक हमैं निरधार्यौ॥

१८

जा हित मांगत छमा न सो छल छाड़त नेकहु।
निज मुख पानिप संग बहावत विसद विवेकहु॥
अरे मूढ़मति भई सकल बसुधा जब मेरी।
काके धन तब अधम देह बिकिहै कहु तेरी"॥

१९

यह सुनि पुनि नरनाह सोच के सिंधु समाने।
बहु बिधि सोधि मुखाग्र बचन मुकता ये आने॥
"सब सास्त्रनि सौं सिद्ध लोक बाहिर जो कासी।
निज त्रिसूल पर धारत जाहि संभु अबिनासी॥

२०

अघ ओघनि करि दूर मोच्छ पद बरबस दैनी।
कहा कठिन जो होहि हमारेहु ऋन की छैनी॥
दारा सुअन समेत जाइ हम तहां बिकैहैं।
एक मास की अवधि दयासागर जो दैहैं"॥

२१

सुनि भूपति के बचन भए मुनि प्रथम चकित अति।
लगे प्रसंसा करन मनहिं मन बहुरि जथामति॥
"धन्य धर्म दृढ़ता हरिचन्द अमंद तिहारी।
सांचहिं तुम तिहुं लोक माहिं नर गौरवकारी"॥

२२

पुनि बानी करि उदासीन यह आज्ञा कीन्ही।
"एक मास की अवधि तुम्हैं करुना करि दीन्ही॥
पै जो एक मास में सब मुद्रा नहिं पैहैं।
तो तोहिं पुरुपनि संग साप दे नरक पठैहैं॥

२३

"जो आज्ञा" कहि नृपति हर्ष जुत सीस नवायौ।
मंत्रिहिं अपर समस्त राजकाजिन्हि बुलवायौ ॥
सब सौं सहित उछाह बिदित बेगहि यह कीन्ह्यौ।
"हम सब राज समाज आज ऋषिराजहि दीन्ह्यौ॥

२४

बेगहिं उठि सिंहासन कौं प्रनाम नृप कीन्ह्यौ।
रोहितास्व बालकहिं महिषि सैव्यहिं संग लीन्ह्यौ॥
चले राज तजि हरष विषाद न कछु उर आन्यौ।
भूलि भाव सब और एक ऋण भंजन ठान्यौ ॥

❀ ❀ ❀

(देवीप्रसाद पूर्ण)

मृत्युञ्जय

(१)

प्रतिनिधे खल काल कराल के !

कुटिल क्रूर भयानक पातकी ।।

अति विलक्षण है तव दुष्क्रिया ।

अशुचि मृत्यु हरे अधमाधम ।।

(२)

करत सैर हुते कल बाग की ।

तुरग बाग गहे कर रेशमी ।।

सुनि परै तिनकी अब वारता ।

चल बसे तजि के जग बाग सौं ।।

(३)

रतन मन्दिर मञ्जु अमन्द में।
रमत जौन निरन्तर ही रहे॥
दिवस अन्तर में सोइ सोवहीं।
अब भयंकर घोर मसान में॥

(४)

गति सुधारन की करि धारना।
उचित है चित धीरज धारियो॥
झटिति हो अथवा कछु काल में।
अवशि जीतहिगै हम काल को॥

(५)

सकल पापन सों बचि के सदा।
शुभ सुकर्म करौ बिन बासना॥
परम सार रहै नित ध्यान में।
सुखद पन्थ यही बर ज्ञान को॥

(६)

जगत है मन की सब कल्पना।
दृढ़ जबै यह निश्चय होत है॥
जगत भासत पूरन ब्रह्म ही।
बस वही परिपूरन ज्ञान है॥

(७)

पर दशा वह पूरन ज्ञान की।
स्थिर सदा रस एक रहै नहीं॥
न जब लौं मन को बस कीजिये।
तजि सबै जड जंगम वासना॥

(८)

सुहृद संग सहोदर सुन्दरी।
सुखद सन्तति धाम बसुन्धरा॥
सुजस सम्पति की मनकामना।
सबन को बस बन्धन मानिये॥

(९)

यदि लखात असार जहान है।
कुढत जो जग बन्धन ते हियो॥
उदित जो उर मुक्ति सुकामना।
करहु तो तुम साधन ज्ञान को॥

(१०)

तिमिरनाश प्रकाश बिना नहीं।
न बिलात घन वात बिना यथा॥
न बरखा बिन जात निदाघ ज्यों।
मिटत काल नहीं बिन ज्ञान के॥

(११)

बिलग बारिधि ते न तरंग है।
पृथकता बरु मन्द बिचारहीं ॥
लहर अंबुधि दोनहुं अम्बु हैं।
जगत ब्रह्ममयो तिमि जानिये ॥

(१२)

कनक के बरु कंकन किङ्किनो।
अमित आकृति के रचिये तऊ ॥
कनक तें नहिं अन्य कछू तथा।
सकल ब्रह्ममयो जग जानिये ॥

(१३)

भवन में मठ में घट में यथा।
गगन देखि अनेक परै तऊ ॥
बिमल बुद्धिन को नभ एक है।
सबन में परमातम है तथा ॥

❀ ❀ ❀

मन बन्दर

तुझे पहचान लियो मैं बन्दर।
कूदा फिरता है त्रिभुवन में बँधा भवन के अन्दर॥
तू बाजीगर जादूगर है बहुरूपिया कलन्दर।
छोटा कभी कभी तू भारी मच्छर कभी मच्छन्दर॥
कभी सवार कभी तू पैदल दारा कभी सिकन्दर।
कभी महन्त सन्त गुरु चेला कभी कुबेर पुरन्दर॥
कभी कुढै राई से दबकर कभी ढहावै मन्दर।
जल में कभी आग में विचरै मगरा कभी समुन्दर॥
अरे अनारी तू मछली है यह सब अगम समन्दर।
उछल कूद निष्फल विचार निज पूरन त्याग न कन्दर॥

❀ ❀ ❀

(रामचरित उपाध्याय)

वीरवचनावलि

(१)

निज बल से बलि के बन्धन को तोड़ न सका पैठि पाताल।
शशि कलंक मैंने नहिं मेटा मेरे हाथों मरा न काल॥
शेष शीस से धरा छीन कर ले न सका सिर उसका भार।
शत्रु शमन कर सका न अपना लाख बार मुझको धिक्कार॥

(२)

खाकर जिसे उगल देते हैं फिर उसको ही खाते श्वान।
छोड़ दिया है जिसे उसे फिर छूते नहीं कभी मतिमान॥
प्राणों ही के साथ सर्वदा प्रण भी उनका जाता है।
शीतल कभी न होता पावक बुझ जरूर वह जाता है॥

(३)

खाकर लात शान्त जो रहते साधु नहीं वे पूरे मूढ।
मारो लात धूलि पर देखो हो जावेगी सिर आरूढ ॥
रिपु से बदला लिये बिना ही कायर नर रह जाते हैं।
तेजस्वी जन उसके सिर पर पद रख यश फैलाते हैं ॥

❀ ❀ ❀

विधि विडम्बना

१—

पतन निश्चित है जिसका हुआ,
हठ उसे प्रिय है निज देह से।
अटल है उसकी विधिवामता,
विनय से नय से घटती नहीं॥

२—

महिमता जिसकी अवलोक के,
अनिश चिन्दक है खलमण्डली।
सुयश क्या उसका जग में नहीं,
धवल है, बल है यदि दैव का॥

३—

हृदय सुस्थिर होकर देख तू,
नियति का बल केवल है जिसे।
कठिन कण्टक मार्ग उसे सदा,
सुगम है गम है करना वृथा॥

४—

शत सहस्रगुणान्वित हैं यहां,
विविध शास्त्र विशारद हैं पड़े।
हृदय! क्यों उनमें फिर एक दो,
सुकृत से कृत सेवक लोक हैं।

५—

जनन का मरना परिणाम है,
मरण हा न मिले फिर देह क्यों।
मन! बली विधि की करतूत से,
पतन का तन का चिर संग है॥

६—

मन! रमा रमणी रमणीयता,
मिल गईं यदि ये विधि योग से।
पर जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता सम है उसे॥

७—

सुविध से विधि से यदि है मिली,
रसवती सरसीव सरस्वती।
मन ! तदा तुझ को अमरत्वदा,
नवसुधा वसुधा पर है मिली ॥

८—

चतुर है चतुरानन सा वही,
सुभग भाग्य विभूषित भाल है।
मन ! जिसे मन में पर काव्य की,
रुचिरता चिरतापकरी न हो ॥

* * *

(*अमीर अली*)

अन्योक्ति सुमन

१

मैना तू बन वासिनी परी पींजरे आन।
जान दैवगति ताहि में रहे शान्त सुख मान॥
रहे शान्त सुख मान बान कोमल तें अपनी।
सब पच्छिन सरदार तोहि कवि कोविद बरनी॥
कहे मीर कवि नित्य बोलती मधुरे बैना।
तो भी तुझ को धन्य बनी तू अजहूँ मैना॥

२

तोता तू पकड़ा गया जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ लिया तौ भी रहा अजान॥
तौ भी रहा अजान ज्ञान का मर्म न पाया।

जीवन पर के हाथ सौंप निज घर बिसराया ॥
कहै 'मीर' समुझाय हाय तू अब लौं सोता।
चेता जो नहिं आप किया क्या पढ के तोता ॥

३

बगला बैठा ध्यान में प्रातः जल के तीर।
मानौं तपसी तप करै मल कर भस्म शरीर ॥
मल कर भस्म शरीर तीर जब देखो मछली।
कहैं मीर ग्रसि चोंच समूची फौरन निगली ॥
फिर भी आवें शरण बैर जो तज के अगला।
उनके भी तू प्राण हरे रे छी ! छी ! बगला ॥

४

कैदी होने के प्रथम था अलि मीर स्वतन्त्र।
उसे पवन ने छल लिया कह के मोहन मंत्र ॥
कह के मोहन मंत्र तंत्र सा फिर कुछ करके।
उसे गई ले खींच पास में गहरे सर के ॥
पड़ा प्रेम में अचल वहां लकड़ी का भेदी।
था जो कोमल कमल बनाया उसने कैदी ॥

५

जाने कीन्हों शमन है मत्त मतङ्ग न मान।
हाय ! दैववश सिंह सो परयो पींजरे आन ॥

परयो पींजरे आन स्वान के गन ढिग भूकैं।
विहँसैं ससा सियार कान पै आके कूकैं॥
मीर बात है सत्य लोक में कहिगे स्याने।
कापै कैसो समय कबै परिहै को जाने॥

६

कोयल तू मन मोह के गई कौन से देस।
तो अभाव में काग मुख लखनो परो भदेस॥
लखनो परो भदेस बेस तोही सो कारो।
पै बोलत है बोल महा कर्कस कटु न्यारो॥
कहैं 'मीर' हे दैव काग को दूर करो दल।
लावो फेर बसन्त मनोहर बोलें कोयल॥

❀ ❀ ❀

(गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही-त्रिशूल')

सत्य

१

सत्य सृष्टि का सार सत्य निर्बल का बल है।
सत्य सत्य है सत्य नित्य है अचल अटल है॥
जीवन सर में सरस मित्रवर यही कमल है।
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निर्मल है॥
मन मलिन्द मुनि वृन्द के मचल मचल इस पर गये।
प्राण गये तो इसी पर न्योछावर होकर गये॥

२

अटल सत्य का प्रेम भरे जिस नर के मन में।
पाये जो आनन्द आत्मबल के दर्शन में॥

पशुबल समझे तुच्छ खड्ग भूषण गर्दन में।
सन के भी जो नहीं गोलियों की सन सन में॥
जीवन में बस प्रेम ही जिसका प्राणाधार हो।
सत्य गले का हार हो इतना उस पर प्यार हो॥

३

सह कर सिर पर भार मौन ही रहना होगा।
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा॥
रङ्ग महल सी जेल आहनी गहना होगा।
किन्तु न मुख से कभी हन्त हा कहना होगा॥
डरना होगा ईश से और दुखी की हाय से।
भिड़ना होगा ठोंक कर खम अनीति अन्याय से॥

४

तुम होगे सुकरात जहर के प्याले होंगे।
हाथों में हथकड़ी पदों में छाले होंगे॥
ईसा से तुम और जानके लाले होंगे।
होगे तुम निश्चेष्ट डस रहे काले होंगे॥
होना मत व्याकुल कहीं इस नवजनित विषाद से।
अपने आग्रह पर अटल रहना बस प्रह्लाद से॥

५

होंगे शीतल तुम्हें आग के भी अङ्गारे।

मर न सकोगे कभी मौत के भी तुम मारे ॥
क्या गम है गर छूट जायंगे साथी सारे।
बहलावेंगे चित्त चन्द्र चमकीले तारे ॥
दुख में भी सुख शान्ति का नव अनुभव हो जायगा।
प्रेम सलिल से द्वेष का सारा मल धो जायगा ॥

६

धीरज देगी तुम्हें मित्रवर मीराबाई।
प्रेम पयोनिधि थाह भक्ति से जिसने पाई ॥
रही सत्य पर डटी प्रेम से बाज न आई।
कृष्ण रङ्ग में रंगी कीर्ति उज्ज्वल फैलाई ॥
आई भी उसकी टली वह विष प्याला पी गई।
मरी उसी की गोद में जिस को पाकर जी गई ॥

७

सत्य रूप हे नाथ तुम्हारी शरण रहूंगा।
जो ब्रत है ले लिया लिये आमरण रहूंगा ॥
ग्रहण किये मैं सदा आप के चरण रहूंगा।
भीत किसी से और न हे भयहरण रहूंगा ॥
पहली मंजिल मौत है प्रेम पन्थ है दूर का।
सुनता हूं मत था यही सूली पर मंसूर का ॥

* * *

(रामचन्द्र शुक्ल)

अछूत की आह

१—

एक दिन हम भी किसी के लाल थे,
आंख के तारे किसी के थे कभी।
बूँद भर गिरता पसीना देख कर,
था बहा देता घड़ों लोहू कोई ॥

२—

देवता देवी अनेकों पूज कर,
निर्जला रह कर कई एकादशी।
तीरथों में जा द्विजों को दान दे,
गर्भ में पाया हमें मां ने कहीं ॥

३—

जन्म के दिन फूल की थाली बजी,
दुःख की रातें कटीं सुख दिन हुआ।
प्यार से मुखड़ा हमारा चूम कर,
स्वर्गसुख पाने लगे माता पिता॥

४—

हाय! हमने भी कुलीनों की तरह,
जन्म पाया प्यार से पाले गये।
जी बचे फूले फले तब क्या हुआ,
कीट से भी नीचतर माने गये॥

५—

जन्म पाया पूत हिन्दुस्तान में,
अन्न खाया और यहीं का जल पिया।
धर्म हिन्दू का हमें अभिमान है,
नित्य लेते नाम हैं भगवान का॥

६—

पर अजब इस लोक का व्यवहार है,
न्याय है संसार से जाता रहा।
श्वान छूना भी जिन्हें स्वीकार है,
है उन्हें भी हम अभागों से घृणा।

७—

जिस गली से उच्च कुल वाले चलें,
उस तरफ चलना हमारा दण्ड्य है।
धर्म ग्रन्थों की व्यवस्था है यही,
या किसी कुलवान का पाखण्ड है॥

८—

हम अछूतों से बताते छूत हैं,
कर्म कोई खुद करें पर पूत हैं।
हैं सभों को ये पराया मानते,
क्या यही स्वामी तुम्हारे दूत हैं॥

९—

शासकों से मांगते अधिकार हैं,
पर नहीं अन्याय अपना छोड़ते।
प्यार का नाता पुराना तोड़ कर,
हैं नया नाता निराला जोड़ते॥

१०—

नाथ तुमने ही हमें पैदा किया,
रक्त मज्जा मांस भी तुमने दिया।
ज्ञान दे मानव बनाया फिर भला,
क्यों हमें ऐसा अपावन कर दिया॥

११—

जो दयानिधि कुछ तुम्हें आये दया,
तो अछूतों की उमड़ती आह का।
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान में,
पांव जम जावे परस्पर प्यार का॥

❀ ❀ ❀

उपदेश

अप्रमेय को शब्द बांधि कै बताइये,
जो अथाह ताहि यों न बुद्धि सों थहाइये।
ताहि पूछि औ बताय लोग भूल ही करैं,
सो प्रसंग लाय व्यर्थ वाद माहिं ते परैं॥ १॥
अन्धकार आदि में रह्यो पुराण यों कहै,
वा महा निशा अखण्ड बीच ब्रह्म ही रहै।
फेर में न ब्रह्म के, न आदि के रहौ, अरे,
चर्मचक्षु को अगम्य और बुद्धि के परे॥ २॥
चलत तारे रहत पूछन जात यह सब नाहिं,
लेहु एतो जानि बस हैं चलत या जग माहिं।

सदा जीवन मरण, सुख दुख शोक और उछाह,
कार्य कारण की लरी औ काल चक्र प्रवाह ॥ ३ ॥
और यह भवधार जो अविराम चलति लखाति,
दूर उद्गम सों सरित चलि सिन्धु दिशि ज्यों जाति।
एक पाछे एक उठति तरंग तार लगाय,
एक हैं सब, एक सी पै परति नाहिं लखाय ॥ ४ ॥
जानिबो एतो बहुत भूस्वर्ग आदिक धाम,
सकल माया दृश्य हैं सब रूप हैं परिणाम।
रहत घूमत चक्र यह श्रम दुःख पूर्ण अपार,
थामि याको सकत कोऊ नाहिं काहु प्रकार ॥ ५ ॥
ब्रह्मलोक तें परे सनातन शक्ति विराजति,
जो या जग में 'धर्म' नाम सों आवति बाजति।
आदि अन्त नहिं जासु नियम हैं जाके अचल,
सत्वोन्मुख जो करति सर्गगति संचित करि फल ॥ ६ ॥
कला ताकी करति है घनपुञ्ज रंजित जाय,
चंद्रिकन पै मोर की दुति ताहि की दरसाय।
नखत ग्रह में सोइ ताही को करैं उपचार,
दमकि दामिनि बहि पवन औ मेघ दै जल धार ॥ ७ ॥
नहिं कुण्ठित होति कैसहु करन में व्यवहार,
होत जो कछु जहां सो सब तासु रुचि अनुसार।

भरति जननि उरोज में जो मधुर छीर रसाल,
धरति सोई व्याल दशनन बीच गरल कराल ॥ ८ ॥
गगन मंडप बीच सोई ग्रह नछत्र सजाय,
बांधि गति, सुर ताल पै निज रही नाच नचाय।
सोइ गहरे खात में भूगर्भ भीतर जाय,
स्वर्ण, मानिक, नील मणि की राशि धरत छपाय ॥ ६ ॥
शक्ति तुम्हरे हाथ देवन सों कछू कम नाहिं,
देव, नर, पशु आदि जेते जीव लोकन माहिं।
कर्मवश सब रहत भरमत बहुत यह भवभार,
लहत सुख औ सहत दुख निज कर्म के अनुसार ॥१०॥

(मैथिलीशरण गुप्त)

भारतवर्ष की श्रेष्ठता

१

भूगोल का गौरव प्रकृति का पुण्य लीलास्थल कहां ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गङ्गा जल जहां।
संपूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है।
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन ? भारतवर्ष है।

२

हां वृद्ध भारतवर्ष ही संसार का सिरमौर है।
ऐसा पुरातन देश कोई विश्व में क्या और है ?
भगवान की भवभूतियों का यह प्रथम भण्डार है।
विधि ने किया नर सृष्टि का पहले यहीं विस्तार है ॥

३

यह पुण्य भूमि प्रसिद्ध है इस के निवासी आर्य हैं,
विद्या कला कौशल्य सब के जो प्रथम आचार्य हैं।
सन्तान उनकी आज यद्यपि हम अधोगति में पड़े,
पर चिह्न उनकी उच्चता के आज भी कुछ हैं खड़े ॥

४

शुभ शान्ति मय शोभा जहां भव बन्धनों को खोलती,
हिलमिल मृगों से खेल करती सिंहनी थीं डोलती।
स्वर्गीय भावों से भरे ऋषि होम करते थे जहां,
उन ऋषि गणों से ही हमारा था हुआ उद्भव यहां ॥

५

उन पूर्वजों की कीर्ति का वर्णन अतीव अपार है,
गाते हमी गुण हैं न उनके गा रहा संसार है।
वे धर्म पर करते निछावर तृण समान शरीर थे,
उन से वही गंभीर थे, वर वीर थे, ध्रुव धीर थे ॥

६

उनके अलौकिक दर्शनों से दूर होता पाप था,
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था।
उपदेश उनके शान्ति कारक थे निवारक शोक के,
सब लोक उनका भक्त था वे थे हितैषी लोक के ॥

७

वे ईश नियमों की कभी अवहेलना करते न थे,
सन्मार्ग में चलते हुए वे विघ्न से डरते न थे।
अपने लिये वे दूसरों का हित कभी हरते न थे,
चिन्ता प्रपूर्ण अशान्ति पूर्वक वे कभी मरते न थे॥

८

वे मोह-बन्धन-मुक्त थे स्वच्छन्द थे स्वाधीन थे,
संपूर्ण सुख संयुक्त थे वे शान्ति शिखरासीन थे।
मन से बचन से कर्म से वे प्रभु भजन में लीन थे,
विख्यात ब्रह्मानन्द नद के वे मनोहर मीन थे॥

९

वे आर्य ही थे जो कभी अपने लिये जीते न थे,
वे स्वार्थवश हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसारके उपकार हित जब जन्म लेते थे सभी,
निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी॥

१०

आदर्श जन संसार में इतने कहां पर हैं हुए?
सत्कार्य भूषण आर्य गण जितने यहां पर हैं हुए।
हैं रह गये यद्यपि हमारे गीत आज रहे सहे,
पर दूसरों के वचन भी साक्षी हमारे हो रहे॥

११

लक्ष्मी नहीं सर्वस्व जावे सत्य छोड़ेंगे नहीं,
अन्धे बनें पर सत्य से सम्बन्ध तोड़ेंगे नहीं।
निज सुत मरण स्वीकार है पर वचन की रक्षा रहे,
है कौन जो उन पूर्वजों के शील की सीमा कहे॥

१२

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे,
अपने अतिथि सत्कार में फिर भी न जो रूखे रहे।
पर तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने,
ऐसे अतिथि सन्तोष कर पैदा किये किस देश ने॥

१३

आमिष दिया अपना जिन्होंने श्येन भक्षण के लिये,
जो बिक गये चाण्डाल के घर सत्य रक्षण के लिये।
दे दीं जिन्होंने अस्थियां परमार्थ हित जानी जहां,
शिवि, हरिश्चन्द्र, दधीचि से होते रहे दानी कहां॥

१४

सत्पुत्र पुरु से थे जिन्होंने तात हित सब कुछ सहा,
भाई भरत से थे जिन्होंने राज्य भी त्यागा अहा।
जो धीरता के वीरता के प्रौढतम पालक हुए,
प्रह्लाद, ध्रुव, कुश, लव तथा अभिमन्यु सम बालक हुए॥

१५

वह भीष्म का इन्द्रिय दमन उनकी धरा सी धीरता,
वह शील उनका और उनकी वीरता गंभीरता।
उनकी सरलता और उनकी वह विशाल विवेकता,
है एक जन के अनुकरण में सब गुणों की एकता॥

पञ्चवटी

१

चारु चन्द्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है अवनी और अम्बर तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोंकों से,
मानों झूम रहे हैं तरु भी मन्द पवन के झोंकों से॥

२

पञ्चवटी की छाया में है सुन्दर पर्णकुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर धीर वीर निर्भीकमना।
जाग रहा यह कौन धनुर्धर जब कि भुवन भर सोता है,
भोगी कुसुमायुध योगी सा बना दृष्टिगत होता है।

३

किस व्रत में है व्रती वीर यह निद्रा का यों त्याग किये,
राजभोग के योग्य विपिन में बैठा आज विराग लिये।
बना हुआ है प्रहरी जिसका उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका तन है, मन है, जीवन है॥

४

कोई पास न रहने पर भी जन मन मौन नहीं रहता,
आप आपकी सुनता है वह आप आप से है कहता।
बीच बीच मे इधर उधर निज दृष्टि डालकर मोदमयी,
मन ही मन बातें करता है धीर धनुर्धर नई नई॥

५

क्या ही स्वच्छ चांदनी है यह, है क्या ही निस्तब्ध निशा,
है स्वच्छन्द सुमन्द गन्ध वह निरानन्द है कौन दिशा।
बन्द नहीं अब भी चलते हैं नियति नटी के कार्यकलाप,
पर कितने एकान्तभाव से कितने शान्त और चुपचाप॥

६

है बखेर देती वसुन्धरा मोती सब के सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको सदा सबेरा होने पर।
और विरामदायिनी अपनी सन्ध्या को दे जाता है,
शून्य श्यामतनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है॥

७

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके पर है मानो कल की बात,
बन को आते देख हमें जब आर्त अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है जब अवधि पूर्ण होगी वन की,
किन्तु प्राप्ति होगी इस जन को इससे बढ़ कर किस धनकी॥

८

और आर्य को? राज्यभार तो वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे हम सब को भी मानो विवश विसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या कर सकता है यह नरलोक॥

९

मझली मां ने क्या समझा था कि मैं राजमाता हूँगी,
निर्वासित कर आर्य राम को अपनी जड़ें जमा लूँगी।
चित्रकूट में किन्तु उसे ही देख स्वयं करुणा थकती,
उसे देखते थे सब वह थी निज को ही न देख सकती॥

१०

होता यदि राजस्वमात्र ही लक्ष्य हमारे जीवन का,
तो क्यों अपने पूर्वज उसको छोड़ मार्ग लेते वन का।
परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं,
किन्तु मुझे तो सीधे सच्चे पूर्व भाव ही भाते हैं॥

११

जो हो जहां आर्य रहते हैं वहीं राज्य वे करते हैं,
उनके शासन में वनचारी सब स्वच्छन्द विचरते हैं।
रखते हैं सयत्न हम पुर में जिन्हें पींजरों में कर बन्द,
वे पशु पत्ती भाभी से हैं हिले यहां स्वयमपि सानन्द ॥

१२

आ आकर विचित्र पशु पत्ती यहां बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देती उनको पञ्चवटी छाया गहरी।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर मां को घेर खिजाते हैं,
खेल खिझाकर भी आर्या को वे सब यहां रिझाते हैं ॥

१३

गोदावरी नदी का तट वह ताल दे रहा है अब भी,
चञ्चल जल कलकल कर मानो तान ले रहा है अब भी।
नाच रहे हैं अब भी पत्ते मन से सुमन महकते हैं,
चन्द्र और नत्तत्र ललककर लालच भरे लहकते हैं ॥

१४

मुनियों का सत्सङ्ग यहां है जिन्हें हुआ है तत्त्व ज्ञान,
सुनने को मिलते हैं उनसे नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट कण्टकों में हैं जिनका जीवन सुमन खिला,
गौरव गन्ध उन्हें उतना ही अत्र तत्र सर्वत्र मिला ॥

१५

अपने पौधों में जब भाभी भर भर पानी देती हैं,
खुरपी लेकर आप निरातीं जब वे अपनी खेती हैं।
पाती हैं तब कितना गौरव कितना सुख कितना सन्तोष,
स्वावलम्ब की एक झलक पर न्यौछावर कुबेर का कोष ॥

१६

सांसारिकता में मिलती है यहां निराली निस्पृहता,
अत्रि और अनसूया कीसी होगीं कहां पुण्यगृहता।
मानो है यह भुवन भिन्न ही कृत्रिमता का काम नहीं,
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी कहीं विकृति का नाम नहीं ॥

बार बार तू आया

बार बार तू आया ।
पर मैंने पहचान न पाया ॥
हिमकम्पित कृशपाणि पसारे,
पहुंच बुभुक्षित मेरे द्वारे,
तू ने मेरा धक्का खाया,
बार बार तू आया ॥
दीन दृगों से निकल पड़ा तू ।
बड़ा सरस था विकल बड़ा तू ॥
पर मैं कौतुक से मुसकाया ।
बार बार तू आया ॥

गलितांगों का गन्ध लगाये।
आया फिर तू अलख जगाये॥
हट कर मैंने तुझे हटाया।
बार बार तू आया॥
आर्त गिरा कानों में आई,
वह थी तेरी आहट लाई,
पर मैं उस पर ध्यान न लाया,
बार बार तू आया॥
पीड़ित के निःश्वास अरे रे!
मैं क्या जानूँ कर थे तेरे!
मुझ पर माया मद था छाया,
बार बार तू आया॥
अब जो मैं पहचानूँ तुझको,
तो तू भूल गया है मुझ को,
मैं हूँ जिसने तुझे भुलाया।
बार बार तू आया,
पर मैंने पहचान न पाया॥

❀ ❀ ❀

इन्द्र जाल

अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया!
खोलूँ जब तक पलक कौतुकी,
तुमने पेड़ लगाया!
भांति भांति के फूल खिले हैं,
रंग रूप रस गंध मिले हैं,
भौंरे हर्षसमेत हिले हैं,
गुंजारव है छाया!
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया!
उड़ उड़ कर पंछी आते हैं,
फुर फुर कर फिर उड़ जाते हैं,

क्या लाते हैं, क्या पाते हैं,
तब भी पता न पाया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !
यह जो अम्ल मधुर फल लाया,
उसने किसे नहीं ललचाया,
वह पछताया जिसने खाया,
और न जिसने खाया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखाया !
पहले के पत्ते झड़ते हैं,
उड़ते हैं गिरते पड़ते हैं,
नवदल रत्न तुल्य जड़ते हैं,
यह क्रम किसे न भाया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !
फल में स्वादु, सुगन्ध कुसुम में,
पर है मूल कहां इस द्रुम में
क्या कहते हो, वह है तुम में,
राम तुम्हारी माया !
अच्छा इन्द्रजाल दिखलाया !

❀ ❀ ❀

(जयशंकर प्रसाद)

किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रंगी हो तुम किसके अनुराग ?
स्वर्ण सरसिज किञ्जल्क समान,
उड़ाती हो परमाणु पराग ।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल—
वेदना दूती सी तुम कौन ?

अरुण-शिशु के मुख पर सविलास
सुनहली लट घुँघराली कान्त,
नाचती हो जैसे तुम कौन?
उषा के अञ्चल में अश्रान्त।
भला, उस भोले मुख को छोड़
चली हो किसे चूमने भाल,
खेल है कैसा या है नृत्य?
कौन देता है सम पर ताल?
कोकनद मधुधारा सी तरल,
विश्व में बहती हो किस ओर,
प्रकृति को देती परमानन्द
उठाकर सुन्दर सरस हिलोर।
स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन?
मिलाती हो उससे भूलोक,
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध
बना दोगी क्या विरज, विशोक?
चपल, ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथशून्य अनन्त,
सुमन मन्दिर के खोलो द्वार,
जगे फिर सोया वहां वसन्त।

(बदरीनाथ भट्ट)

सूरदास

सूर को अन्धा कौन कहे ?
करे लोक को जो आलोकित अन्धा वही रहे ॥
क्या प्रभु ने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम रूप ?
नहीं, घोर तम में दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥
दिये बिहारी चकाचौंध से सबके नेत्र बिगाड़ ।
अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको सभी हटाई आड़ ॥
नेत्र रहित हो उस अथाह की पाई तुमने थाह ।
नेत्र सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥

गही कृष्ण ने बांह तुम्हारी हुई न अड़चन नेक।
तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनिया थे तुम दोनों एक॥
जिस अदृश्य ने अन्धकूप से खींच किया दुख दूर।
कैद उसी को किया हृदय में हो तुम सचमुच सूर॥
कहीं न देखा गया सुना था सूर श्याम का साथ।
लेकिन तुमने कर दिखलाया वह भी हाथों हाथ॥
अलङ्कार ध्वनि रसमय निकले हृदयवेणु से तान।
वही हमारे लिये बन गई मधुर अलौकिक गान॥
जिस सद् भक्ति तत्त्व को उसने फैलाया सब ठौर।
उसे भूल कर हन्त हुए हम आज और के और॥

❀ ❀ ❀

मेरी विभूति

पूछते हो क्या मेरा नाम।
जड़ चेतन सब दिखा रहे हैं मेरा रूप ललाम॥
जल, थल, अनल, अनिल, गगन सब में हूँ मैं व्याप्त।
विश्व बीज ओंकार तक मुझ में हुआ समाप्त॥
आत्मज्ञान की नाव में बैठा हूँ सानन्द।
भवसागर में घूमता फिरता हूँ स्वच्छन्द॥
भव जल में मैं कमल हूँ भवघन में आदित्य।
भव घट मठ में व्योम हूँ अद्‌भुत अक्षर नित्य॥

नर तनु है धारण किया करने को खिलवाड़।
कोई देख सका नहीं तिल की ओट पहाड़॥
अहङ्कार का हार डाल कल्पना के गले।
मायामय संसार बन बैठा मैं आपही॥

नया फूल

खिला है नया फूल उपवन में ।

हो रहे हैं सब तरुवर बेलें हँसती मन में ॥

प्रात समीर लगी सुख पाया पहली दशा भुलाई ।

जिधर निहारा उधर प्रेम की थाली परसी पाई ॥

रूप अनूठा लेकर आया मृदु सुगन्धि फैलाई ।

सब के हृदय देश में अपनी प्रभुता ध्वजा उड़ाई ॥

जीत लिया है तूने सबको ऐसी लहर चलाई ।

रोकर हँसकर सभी तरह से अपनी बात बनाई ॥

❀ ❀ ❀

तुलसीदास और रामायण

सुलभ कर गये ब्रह्म का ज्ञान ।
तरने को भवसिन्धु बनाया राम नाम जल यान ॥
दृश्य अदृश्य अलौकिक लौकिक मिले एक ही ठांव ।
भक्ति ज्ञान वैराग्य आदि आ बसे एक ही गांव ॥
स्वार्थ और परमार्थ मिलाया हुआ सार निःसार ।
अनुभव की कुंजी से खोला अगम मुक्ति का द्वार ॥
मोह शिखर पर फंसे जनों को सीढी है तय्यार ।
गिरने का है डर न जराभी राम नाम आधार ॥
रोम रोम में रमा तुम्हारे राम रूप संसार ।
भक्ति प्रेम अवतार धन्य है तुम को बारंबार ॥

(वियोगी हरि)

उत्साह तरङ्ग

जयतु कंस करि केहरी मधुरिपु केशी काल ।
कालियमदमर्दन हरे केशव कृष्ण कृपाल ॥ १ ॥
परिनामहुँ जो देतु है लोकोत्तर आनन्द ।
सुरस बीर रसराजु सो सहित उछाह अमन्द ॥ २ ॥
छांडि बीररसु अब हमैं नहिं भावतु रस आन ।
ध्यावतु सावन आंधरो हरो हरो हि जहान ॥ ३ ॥
कहा करौं माधुर्य लै मृदुल मंजु बिनु ओज ।
दिपैं न ज्योति बिकास बिनु सुन्दर नैन सरोज ॥ ४ ॥

खंड खंड ह्वै जाय वरु, देतु न पाछें पेंड।
लरत सूरमा खेतकी मरत न छांड़तु मेंड॥ ५॥
खल खंडन मंडन सुजन सरल सुहृद सविवेक।
गुणगंभीर रण सूरमा मिलतु लाख में एक॥ ६॥
खल घालक पालक सुजन सुहृद सदय गंभीर।
कहूं एक सत लाख में प्रकृत सूर रणधीर॥ ७॥
मुँह मांगे रण सूरमा देतु दान परहेतु।
सीसदान हूं देतु पै पीठिदान नहिं देतु॥ ८॥
दयाधर्म जान्यौ तुहीं सब धर्मनु कौ सार।
नृप शिबि तेरे दान पै बलि हूँ बलि सौ बार॥ ९॥
तूं हीं या नर देह कौ बलि पारखी अनूप।
दया खड्ग मरमी तुहीं दया सूर शिबि भूप॥ १०॥
सुन्दर सत्य सरोजु सुचि विगस्यौ धर्म तडाग।
सुरभित चहुँ हरिचन्द कौ जुग जुग पुन्य पराग॥ ११॥
जौ न जन्म हरिचन्द कौ होतो या जग मांहि।
जुग जुग रहति असत्य की अमिट अँधेरी छांह॥ १२॥
इत गांधी उत सत्य दोउ मिले परस्पर चाहि।
यह छांडतु नहिं ताहि त्यौं वह छांडतु नहिं याहि॥ १३॥
धनि तेरी तपधीरता धनि गुणगणगंभीर।
या कलि में गांधी तुहीं इक सत्याग्रह बीर॥ १४॥

नहिं बिचल्यौ सत पंथ तें सहि असह्य दुखद्वंद।
कलि में गांधी रूप ह्वै प्रगट्यौ पुनि हरि चंद ॥ १५ ॥
हँसत हँसत निज धर्म पै दियौ जु सीसु चढ़ाय।
धर्म समर में मरि भयौ अमर हकीकतराय ॥ १६ ॥
सुर तरु लै कीजै कहा अरु चिन्तामणि ढेरु।
इक दधीचि की अस्थि पै वारिय कोटि सुमेरु ॥ १७ ॥
करि कादर सों मित्रता कहा लाभ है मीत।
सत्रुताहु रण सूर प्रति मंगल मूर्ति पुनीत ॥ १८ ॥
कहतु कौन कायर तुम्हें बल सायर रण माहिं।
भभरि भाजिबो पीठि दै सब के बस कौ नाहिं ॥ १९ ॥
मति मन मानिक सौंपियौ कुटिल कादरनु हाथ।
हैं वै ही सत जौहरी नहिं जिन धर पै माथ ॥ २० ॥
औघट घाट कृपाण कौ समर धार बिनु पार।
सनमुख जे उतरे तरे परे बिमुख मँझधार ॥ २१ ॥
पैरि पार असिधार कै नाखि युद्ध नद भीर।
भेदि भानु मंडलहिं अब चल्यौ कहां रणधीर ॥ २२ ॥
लरतु काल सों लाख में कोइ माइ को लाल।
कहु केते करबाल कों करत कंठ कलमाल ॥ २३ ॥
धन्य भीम ? रणधीर तूं धरि अरि छाती पाव।
भरि अँजुरिनि शोणितु पियौ इन मूँछनि दै ताव ॥ २४ ॥

धन्य कर्ण ! रिपु रक्त सों दियो पूरि रण-कुँड ।
करि कन्दुक अति चाव सों उछरि उछारे मुँड ॥ २५ ॥
प्राण हथेरी पर धरे किए ओज मद पान ।
तबर तीर तलवार लै चलै जूझिबै ज्वान ॥ २६ ॥
छत्रिय छत्रिय कहे तें छत्रिय होय न कोय ।
सीसु चढ़ावै खड्ग पै छत्रिय सोई होय ॥ २७ ॥
जोरि नाम संग सिंह पदु कियौ सिंह बदनाम।
ह्वै हैं क्यों करि सिंह यों करि शृगाल के काम ॥ २८ ॥
वह दिनु वह छिनु वह घरी पुनि पुनि आवत नाहिं।
हिलुरि हिलुरि जब हंस ए समर माहिं अवगाहिं॥ २९ ॥
कादर तौ जीवत मरत दिन में बार हजार ।
प्रान पखेरू बीर के उड़त एक हीं बार ॥ ३० ॥
अरे फिरत कत बावरे भटकत तीरथ भूरि ।
अजौं न धारत सीस पै सहज सूर पग धूरि ॥ ३१ ॥
तहँ पुष्कर तहँ सुरसरी तहँ तीरथ तप याग ।
उठ्यो सुबीर कबन्ध जहँ तहँईं पुण्य प्रयाग ॥ ३२ ॥
कै कृपाण की धार कै अनल कुंड कौ ठाट ।
एही बीर बधून के द्वै अन्हान के घाट ॥ ३३ ॥
सुभट सीस सोनित सनी समर भूमि धनि धन्य।
नहिं तो सम तारण तरण त्रिभुवन तीरथ अन्य॥ ३४ ॥

नमो नमो कुरुठखेत! तुव महिमा अकथ अनूप।
कण कण तेरो लेखियतु सहसतीर्थ प्रतिरूप॥ ३५॥
जो जन लोभी सीस के ते अधीन दिन दीन।
सीसु चढ़ायें बिनु भयौ कहौ कौन स्वाधीन॥ ३६॥
एक ओर स्वाधीनता सीसु दूसरी ओर।
जो दो में भावै तुम्हैं भरि सो लेहु अंकोर॥ ३७॥
चाहौ जो स्वाधीनता सुनौ मन्त्र मन लाय।
बलिवेदी पै निज करनि निज सिरु देहु चढ़ाय॥ ३८॥
सौंप्यौ स्वामिहिं कोउ जन कोउ धन हय गय ठौरु
पै वह सहजैं सौंपि सिरु भयौ सबनु सिरमौरु॥ ३९॥
लै बल बिक्रम बीन कवि! किन छेड़त वह वान।
उठैं डोलि जेहिं सुनत हीं धरा मेरु ससि भान॥ ४०॥
लै निज तंत्री छेड़दै कवि! वह राग अभंग।
उठै धरा तें ओज की नभ लगि तुंग तरंग॥ ४१॥
अब नख सिख सिंगार के पढ़त कवित कमनीय।
आजु लाल भूषण सरिस रहे न कवि जातीय॥ ४२॥
सिवा सुजस सरसिज सुरस मधुकर मत्त अनन्य।
रसभूषण भूषण, सुकवि भूषण, भूषण धन्य॥ ४३॥
रिपुगण सुनि भूषण कवितु क्यों न होय सरविद्ध।
जाकी रसना पै सदा रहति चण्डिका सिद्ध॥ ४४॥

एकछत्र बन कौ अधिप पंचाननहीं एक।
गज शोणित सों आपहीं कियौ राज अभिषेक॥ ४५ ॥
कांपतु कोपित केहरी मुहुँ बाये बिकराल।
रहै धँधकि अंगार कै प्रलयकाल के लाल॥ ४६ ॥
छिन्न भिन्न ह्वै उड़ति क्यों मद भौंरनु की भीर।
दार्‍यो कुम्भ करीन्द्र कौ कहूँ केहरी बीर॥ ४७ ॥
पराधीन सबु देखियतु बल बीरज तें हीन।
या कानन में केसरी! इक तूँ हीं स्वाधीन॥ ४८ ॥
जा तनु बारिधि में सदा खेलति अतनु तरंग।
उमगैगी क्योंकरि कहौ तामधि युद्ध उमंग॥ ४९ ॥
होति लाख में एक कहुँ, अनल बर्न वह आंख।
देखत हीं दहि करति जो दुवनदीह दलु राख॥ ५० ॥
सुभट नयन अंगारु पै अचरजु एकु लखातु।
ज्यौं ज्यौं परतु उमाह जलु त्यौं त्यौं धंधकत जातु॥ ५१ ॥
जाव फूटि रति रंगरली अलसौहीं वह आंख।
सहज ओज ज्वाला ज्वलित चिर जीवौ जुग लाख॥ ५२ ॥
सुरत रंग कहँ दृगनि में कहँ रण ओज उदोतु।
यातें उज्ज्वल होतु मुखु वातें कज्जल होतु॥ ५३ ॥
बसति आपु लघु म्यान में वह कृपान लघुगात।
त्रिभुवन में न समातु पै सुजसु तासु अवदात॥ ५४ ॥

तड़ित और तरवार में समता किमि ठहराय ।
ज्यौंहीं यह चमकति दमकि त्यौंही वह दुरि जाय ॥ ५५ ॥
वह नांगी तरवारहू बनी लजीली नारि ।
नहिं खोल्यौ मुख म्यान तें ह्वै मनु परदावारि ॥ ५६ ॥
इत सर सारंग पै चढतु चढ़ि रागतु रणरागु ।
उत अरि अङ्गना अङ्ग तें उतरतु सहज सुहागु ॥ ५७ ॥
गो घातक वा बाघकी जननि खैंचिहौं पूँछ ।
तीखन डाढ़ैं तोरिहौं अरु उखारिहौं मूँछ ॥ ५८ ॥
प्रेम मरमु जानै कहा विषयी कायर कूर ।
इक सांचो रणसूर ही पहिंचानतु रसमूर ॥ ५९ ॥
रे विषयी प्रेमी बनत नैक न लागति लाज ।
केते कठिन कपोत व्रत पालन हारे आज ॥ ६० ॥
सब तो सांचे में ढरे ढरे न ए द्वै ढार ।
प्रेम मेंड रखवार औ सीसु चढ़ावन हार ॥ ६१ ॥
मथि मथि अच्छनिधि मरे कढ़्यौ न कछुवै सार ।
इक प्रेमी इक सूरमा भये उतरि भव पार ॥ ६२ ॥
और अस्त्र केहि काम के प्रेम अस्त्र जो साथ ।
प्रेम रथी के हाथ हैं महारथिनु के माथ ॥ ६३ ॥
खण्ड खण्ड ह्वै जाव पै धर्म न तजियौ एक ।
सपथ लाल या खड्ग की रहियौ गहि कुल टेक ॥ ६४ ॥

कह्यौ माय मुख चूमिकैं कर गहाय करबाल।
जनि लजाइयौ दूध मो पयोधरनु कौ लाल॥ ६५॥
चूर चूर ह्वै अन्त लौं रखियौ कुल की लाज।
जननि दूध पितु खड्ग की अहै परिच्छा आज॥ ६६॥
लोटि लोटि जापै भये धूरि धूसरित आज।
वत्स तुम्हारे हाथ है ता धरनी की लाज॥ ६७॥
मिलतु न पत्रा में सुदिनु भिरत न कादर मन्द।
नहिं सोधत रणबांकुरे नखत बार तिथि चन्द॥ ६८॥
रहि हौं अस्त्र गहाय हरि रखि निज प्रण की लाज।
कै अब भीषम हीं यहां कै तुमहीं यदुराज॥ ६९॥
इत पारथ रथ सारथी उत भीषम रण धीर।
तिलहू नहिं टारे टरै दुहँ वज्र प्रण वीर॥ ७०॥
भानु अस्त लौं आजु जौ बच्यौ जयद्रथ जीव।
चिता लाय तनु जारि हौं तोर तोर गाण्डीव॥ ७१॥
लै न सक्यौ हरि! आजु जौ अधम जयद्रथ जीव।
तौ पारथ हौं क्लीब अब नहिं लैहौं गाण्डीव॥ ७२॥
मूँछ न तौ लौं ऐंठिहौं हौं प्रताप पुज हीन।
करि पायो जौ लौं न मैं गढ़ चितौर स्वाधीन॥ ७३॥
महल नाहिं पगु धारिहौं रहिहौं कुटी छवाय।
हौं प्रताप जौ लौं न ध्वज दई फेरि फहराय॥ ७४॥

मिलियौ तहँ परखति प्रिये! मिलिहौं सरबसु बारि।
बिसिख हारु हौं पौन्ह, तुम ज्वालमाल उर धारि ॥ ७५ ॥

सुमृदु सिरीष प्रसून तें कठिन बज्र तें होय ।
प्रकृत बीरबर हीयकौ चित्र न खींच्यौ कोय ॥ ७६ ॥

झांसी दुर्गम दुर्ग धनि महिमा अमित अनूप ।
जहां चञ्चला अवतरी प्रगट चण्डिका रूप ॥ ७७ ॥

पराधीनता दुखभरी कटति न काटें रात ।
हा स्वतंत्रता कौ कबै ह्वै है पुण्य प्रभात ॥ ७८ ॥

अथयौ बीर्य प्रताप रवि भावन भारत मांझ ।
अब तौ आई दुखमई अधिक अंधेरी सांझ ॥ ७९ ॥

निज तासों तो बैरु अब है परता सों प्रीति ।
निज तौ पर, पर निज भये, कहा दई यह रीति ॥ ८० ॥

पर भाषा पर भाव पर भूषन पर परिधान ।
पराधीन जन की अहै यह पूरी पहिचान ॥ ८१ ॥

दम्भ दिखावत धर्म कौ यह अधीन मति अन्ध ।
पराधीन अरु धर्म कौ कहो कहा सम्बन्ध ॥ ८२ ॥

जैहै डूबि घरीक में भारत सुकृत समाज ।
सुदृढ़ सौर्य बलबीर्य कौ रह्यौ न आज जहाज ॥ ८३ ॥

जरि अपमान अङ्गार तें अजहुँ जियत ज्यौं छार ।
क्यों न गर्भ तें गरि गिरयो निलज नीच भूभार ॥ ८४ ॥

दई छांडि निज सभ्यता निज समाज निज राज ।
निज भाषा हू त्यागि तुम भये पराये आन ॥ ८५ ॥
मरनु भलो निज धर्म में, भयदायक पर धर्म ।
पराधीन जानै कहा, यह निज पर कौ मर्म ॥ ८६ ॥
तुच्छ स्वर्ग हूँ गिनतु जो, इक स्वतंत्रता काज ।
बस वाही के हाथ है आज हिन्द की लाज ॥ ८७ ॥
भीख सरिस स्वाधीनता, कन कन जाचत सोधि ।
अरे ! मसक की पांसुरिनु पाट्यौ कौन पयोधि ? ८८ ॥
अणु अणु पै मेवाड़ के छपी तिहारी छाप ।
तेरे प्रखर प्रताप तें राणा प्रबल प्रताप ॥ ८९ ॥
जगत जाहि खोजत फिरै, सो स्वतंत्रता आप ।
बिकल तोहि हेरति अजौं, राणा निठुर प्रताप ॥ ९० ॥
ओ प्रताप ! मेवाड़पति ! यह कैसो तुव काम ?
खात खलनु तुव खङ्ग पै होत काल कौ नाम ॥ ९१ ॥
गरब करत कत बावरे, उमङ्गि उच्च गिरिशृङ्ग ।
जस गौरव सिवराज कौ, इत नभ तें हुँ उतङ्ग ॥ ९२ ॥
पराधीनता सिन्धु मधि, डूबत हिन्दू हिन्द ।
तेरे कर पतवार अब, पतधर गुरु गोविन्द ॥ ९३ ॥
माथ रहौ वा ना रहौ तजैं न सत्य अकाल ।
कहत कहत ही चुनि गये, धनि गुरु गोविन्दलाल॥ ९४ ॥

अहे अहेरी! यह कहा, कायर करत अहेर।
क्यों न लपकि ललकारि तूँ पकरि पछारत शेर ॥ ६५ ॥
बस काढ़ो मति म्यान तें, यह तीछन तरवार।
जानत नहिं ठाड़े यहां, रसिक छैल सुकुमार ॥ ६६ ॥
कवच कहा ए धारि हैं लचकीले मृदु गात।
सुमनहार के भार जे, तीन तीन बल खात ॥ ६७ ॥
कहा भयो इक दुर्ग जो, ढायो रिपु रणधीर।
तुम तो मानिनि मान गढ़, नित ढाहत रतिबीर ॥ ६८ ॥
सुमन सेज संग बाल तुम पौढे करि सिंगार।
को भीषमसर सेज की, अब पत राखन हार ॥ ६६ ॥
एहैं कहु केहि काम ए, कादर काम अधीर।
तिय मृग ईछनहीं जिन्हैं हैं अति तीछन तीर ॥ १०० ॥
बरषत विषम अंगार चहुँ, भयौ छार बर बाग।
कवि कोकिल कुहकत तऊ, नव दंपति रति राग ॥ १०१ ॥
सुख संपति सब लुटि गयौ, भयौ देस उर घाय।
कंकनकिंकिनि का अजौं, सुनत झनक कविराय ॥ १०२ ॥
तिय कटि कृसता कौ कविनु नित बखानु नव कीन।
वह तौ छीन भई नहीं, पै इनकी मति छीन ॥ १०३ ॥
मरत पूत उत दूध बिनु, बिलपत बिकल किसान।
इत बैठ्यौ सठ! करत तैं सँग कामिनि मद पान ॥ १०४ ॥

बृष रवि आतप तपि कृषक, मरत कलपि बिनु नीर।
इत लेपत तुम अरगजै, बिरमि उसीर कुटीर ॥ १०५ ॥
उत हाकिम रैयत रकत, करत पान उर चीर।
इत पीवत तैं मद अरे! नृपति मनोज अधीर ॥ १०६ ॥
लखि जिनके मजबूत भुज, कांपत हैं यमदूत।
भारत भू पै अब कहां वै बांके रजपूत ॥ १०७ ॥
रे निलज्ज! जिनके अछत, अरिहिं झुकायौ माथ।
अब तिन मूँछन पै कहा पुनि पुनि फेरत हाथ॥ १०८ ॥
कहं प्रताप कहं दाप वह, कहां आन कहं बान।
कहां ऐड़ कह मेंड़ अब, है सब सूखी शान ॥ १०९ ॥
अब कोयल! वह ऋतु कहां, कहँ कूजन तरु डार?
वह रसाल रस बौर कहँ, वह बन बिहङ्ग बिहार॥ ११० ॥
ह्वै है पुनि स्वाधीन तुम सदा न रहिहौ दास।
या युग के बलिदान कौ लिखियौ तब इतिहास॥ १११ ॥
आजु कालि कबतें करत, भये न कबहूँ तयार।
घलाघली उत ह्वै रही, इत मांजत हथियार ॥ ११२ ॥
भूलेहुँ कबहुँ न जाइये, देस विमुख जन पास।
देस बिरोधी संग तें, भलौ नरक कौ बास ॥ ११३ ॥
तन कारो कारो कुदिन, कारो कुल गृह गोत।
पै कुरूप वारेनु कौ, हियौ न कारो होत ॥ ११४ ॥

चित्र आर्य साम्राज्य कौ सक्यौ न कोउ उतारि।
चीन ग्रीसहू के गये, चतुर चितेरे हारि ॥ ११५ ॥
ऐहैं याही ठौर हम, कहा फिरें जग होत।
जैसे पंछी पोत कौ, उड़ि आवतु पुनि पोत ॥ ११६ ॥
अथयौ सो अथयौ न पुनि उनयो भीषममान।
आर्य शक्ति जय पद्मिनी परी तबहिं तें म्लान ॥ ११७ ॥
कठिन राम कौ नाम है, सहज राम कौ नाम।
करत राम कौ काम जे, परत राम सों काम ॥ ११८ ॥
चूसि गरीबनु कौ रकतु, करत इन्द्र सम भोग।
तउ 'गरीब परबर' उन्हैं, कहत कहो ए लोग ॥ ११९ ॥
नभ जिमि बिन ससि सूरके, जिमि पंछी बिनपांख।
बिना जीवजिमि देहतिमि, बिनाओज यह आंख॥ १२० ॥
इन नैननि किन राखिये दुखित दूबरे दीन।
कीजै निज बलिदान दै, दलित देस स्वाधीन ॥ १२१ ॥
कलपावत कबतें हमें धारि निठुरता रूप।
करुनाधन! तुम हूँ भये आजकालि के भूप ॥ १२२ ॥

* * *

(रामनरेश त्रिपाठी)

तेरी छवि

हे मेरे प्रभु व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में।
तेरी ही छवि का विकास है कवि की वाणी में मन में।।
माता के निःस्वार्थ नेह में प्रेम मयी की माया में।
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में।।
पतिव्रता नारी के बल में वृद्धों के लोलुप मन में।
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्य मय यौवन में।।
तृण की लघुता में पर्वत की गर्वभरी गौरवता में।
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में।।

उषा की चञ्चल समीर में खेतों में खलियानों में।
गाते हुए गीत सुख दुःख के सरल स्वभाव किसानों में॥
श्रमी किन्तु निर्धन मजूर की अति छोटी अभिलाषा में।
पति की बाट जोहती बैठी गरीबनी की आशा में॥
भूख प्यास से दलित दीन की मर्मभेदनी आहों में।
दुखिया के निराश आंसू में प्रेमी जन की राहों में॥
मुग्ध मोर के सरस नृत्य में कोकिल के पञ्चम स्वर में।
वन पुष्पों के स्वाभिमानमें कलियों के सुन्दर घर में॥
निर्जनता की व्याकुलता में सन्ध्या के संकीर्तन में।
तेरी ही छवि का विकास है सन्तत परहित चिन्तन में॥
खोल चन्द्र की खिड़की जब तू स्वर्ग सदन से हँसता है।
पृथ्वी पर नवीन जीवन का नया विकास विकसता है॥
जी में आता है किरनों में घुल कर पल भर में।
बरस पड़ूँ मैं इस पृथ्वी पर विस्तृत शोभा सागर में॥

❀ ❀ ❀

अन्वेषण

मैं ढूंढता तुझे था जब कुंज और वन में ।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ।।
तू आह बन किसी की मुझ को पुकारता था ।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में ।।
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू ।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ।।
बन कर किसी के आंसू मेरे लिये बहा तू ।
आंखें लगी थीं मेरी तब यार के बदन में ।।
बाजे बजा बजा के मैं था तुझे रिझाता ।
तब तू लगा हुआ था पतितों के संगठन में ।।

मैं था विरक्त तुझ से जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में ॥
बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहां चरन में।
तू ने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं ॥
तू कर्म में मगन था मैं मस्त था कथन में ॥
हरिचँद और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में ॥
मैं सोचता तुझे था रावण की लालसा में।
पर था दधीचि के तू परमार्थ रूप तन में ॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फरहाद कोहकन में ॥
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।
तू अन्त में हंसा था महमूद के रुदन में ॥
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में ॥
आखिर चमक पड़ा तू गांधी की हड्डियों में।
मैं था तुझे समझता सुहराब पील तन में ॥
कैसे तुझे मिलूंगा जब भेद इस कदर है।
हैरान हो के भगवन्! आया हूं मैं सरन में ॥

तू रूप है किरन में सौंदर्य है सुमन में।
तू प्रान है पवन में विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुस्लिमों में।
तू प्रेम क्रिश्चियन में है सत्य तू सुजन में॥
हे दीनबन्धु! ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूं तुझे दृगों में मन में तथा बचन में॥
कठिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है।
मुझ को समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में॥
दुख में न हार मानूं सुख में तुझे न भूलूं।
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में॥

❀ ❀ ❀

(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला)

नयन

मद भरे ये नलिन नयन मलीन हैं।
अल्प जल में या विकल लघु मीन हैं?
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी-
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं॥
या पथिक से लोल लोचन? कह रहे-
हम तपस्वी हैं सभी दुख सह रहे,
गिन रहे दिन ग्रीष्म वर्षा शीत के,
काल ताल तरङ्ग में हम बह रहे।
मौन हैं, पर पतन में, उत्थान में,
वेणु बरवादन निरत विभुगान में,

हैं छिपा जो मर्म उसका, समझते,
किन्तु तो भी हैं उसी के ध्यान में ॥
आह ! कितने बिकल जन मन मिल चुके,
खिल चुके कितने हृदय हैं हिल चुके,
तप चुके वे प्रिय व्यथा की आंच में,
दु:ख उन अनुरागियों के भिल चुके ॥
क्यों हमारे ही लिये वे मौन हैं ?
पथिक ! वे कोमल कुसुम हैं कौन हैं ?

❀ ❀ ❀

यमुना के प्रति

किस अतीत का दुर्जय जीवन
अपनी अलकों में सुकुमार
कनक कुसुम सा गूंथा तूने
यमुने ! किस का रूप अपार ?
निर्निमेष नयनों में छाया
किस विस्मृति मदिरा का राग ?
अब तक पलकों में पुलकों में
छलक रहा है विपुल सुहाग !

मुक्त हृदय के सिंहासन पर
किस अतीत के वे सम्राट
दीप रहे जिन के मस्तक पर
रवि शशि तारे विश्व विराट ?

* * *

स्मृति

(१)

जटिल जीवन मद में तिर तिर
डूब जाती हो तुम चुप चाप,
सतत द्रुत गतिमयि अयि फिर फिर
उमड़ करती हो प्रेमालाप,
सुभ्र मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान ।

(२)

सफल जीवन के सब असफल—
कहीं की जीत कहीं की हार—

जगा देता है गीत सकल
तुम्हारा ही निर्भय झङ्कार,
वायु व्याकुल शत दल से हाय
विकल रह जाता हूँ निरुपाय!

(३)

मुक्त शैशव मृदु मधुर मलय
स्नेह कम्पित किसलय लघुगात,
कुसुम अस्फुट नव नव सञ्चय,
मृदुल वह जीवन कनक प्रभात;
आज निद्रित अतीत में बन्द
ताल वह, गतिवह, लय वह छन्द।

(४)

आंसुओं से कोमल झर-झर
स्वच्छ निर्झर जल कण से प्राण
सिमट, सट पट, अन्तर भर भर
जिसे देते थे जीवन दान
वही चुम्बन की प्रथम हिलोर
स्वप्न स्मृति, दूर, अतीत, अछोर!

(५)

तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत—
स्वर्ग आशाओं की अभिराम—
क्रान्ति की सरल मूर्ति निद्रित—
गरल की अमृत अमृत की प्राण—
रेणु सी किस दिगन्त में लीन ?
वेणु ध्वनि सी न शरीराधीन।

❀ ❀ ❀

तुम और मैं

(१)

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग और मैं चञ्चल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मैं कान्त कामिनी कविता॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति।
तुम सुरापानघन अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर किरण जाल मैं सरसिजकी मुसकान।
तुम वर्षों के बीते वियोग मैं हूँ पिछली पहचान॥

तुम योग और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ॥

(२)

तुम मृदुमानस के भाव और मैं मनोरंजिनी भाषा
तुम नन्दन वन घन विटप और मैं सुख शीतल तल शाखा ॥
तुम प्राण और मैं काया ।
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मनोमोहनी माया ।
तुम प्रेममयी के कंठहार मैं वेणी काल नागिनी ।
तुम कर पल्लव झंकृत सितार मैं व्याकुल विरह रागिनी ॥
तुम पथ हो मैं हूँ रेणु ।
तुम हो राधा के मनमोहन,
मैं उन अधरों की वेणु ॥।

(३)

तुम पथिक दूर के श्रान्त और मैं बाट जोहती आशा ।
तुम भव सागर दुस्तार पार जाने की मैं अभिलाषा ॥
तुम नभ हो मैं नीलिमा ।
तुम शरद सुधाकर कला हास,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा ॥

तुम गन्ध कुसुम कोमल पराग मैं मृदु गति मलय समीर।
तुम स्वेच्छाचारी युक्त पुरुष मैं प्रकृति प्रेम जंजीर॥
तुम शिव हो मैं हूँ शक्ति।
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति॥

(४)

तुम हो प्रियतम मधुमास और मैं पिक कल कूजन तान।
तुम मदन पञ्च शर हस्त और मैं हूँ मुग्धा अनजान॥
तुम अम्बर मैं दिग्वसना।
तुम चित्रकार घन पटल श्याम,
मैं तडित्तूलिका रचना॥
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य मैं युवति मधुरनूपुर-ध्वनि,
तुम नाद वेद ओङ्कार सार मैं कवि शृङ्गार शिरोमणि॥
तुम यश हो मैं हूँ प्राप्ति।
तुम कुन्द इन्दु अरविन्द शुभ्र,
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति॥

(सुमित्रानन्दन पन्त)

छाया

(१)

कहो कौन दमयन्ती सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल सा निष्ठुर कोई ?

नीले पत्तों की शय्या पर
तुम विरक्ति सी मूर्छा सी
विजन विपिन में कौन पड़ी हो
विरहमलिन दुखविधरा सी ?

(२)

पछतावे की परछाईं सी
तुम भू पर छाई हो कौन ?
दुर्बलता सी अँगड़ाई सी,
अपराधी सी, भय से मौन ?

निर्जनता के मानसपट पर
बार बार भर ठंडी सास—
क्या तुम छिप कर क्रूर काल का
लिखती हो अकरुण इतिहास ?

(३)

निज जीवन के मलिन पृष्ठ पर
नीरव शब्दों में निर्भर
किस अतीत का करुण चित्र तुम
खींच रही हो कोमलतर !

दिनकर कुल में दिव्य जन्म पा,
बढ़ कर नित तरुवर के संग,
मुरझे पत्तों की साड़ी से
ढक कर अपने कोमल अंग।

(४)

पर सेवा रत रहती हो तुम
हरती नित पथ श्रान्ति अपार ।
हां सखि ! आओ बांह खोल हम
लगकर गले जुड़ा लें प्राण ।
फिर तुम तम में मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अन्तर्धान ॥

मुसकान

कहेंगे क्या मुझ से सब लोग
कभी आता है इसका ध्यान !
रोकने पर भी तो सखि हाय !
नहीं रुकती है यह मुसकान

विपिन में पावस के से दीप
सुकोमल सहसा सौ सौ भाव
सजग हो उठते नित उर बीच
नहीं रख सकती तनिक दुराव !
कल्पना के ये शिशु नादान
हँसा देते हैं मुझे निदान !

तारकों से पलकों पर कूद
नींद हर लेते नव नव भाव
कभी बन हिम जल की लघु बूँद
बढ़ाते मुझ से चिर अपनाव;
गुदगुदाते ये तन मन प्राण,
नहीं रुकती तब यह मुसकान

कभी उड़ते पत्तों के साथ
मुझे मिलते मेरे सुकुमार
बढ़ा कर लहरों से निज हाथ
बुलाते फिर मुझको उस पार;

नहीं रखती मैं जग का ज्ञान,
और हँस पड़ती हूँ अनजान,
रोकने पर भी तो सखि! हाय!
नहीं रुकती तब यह मुसकान॥

(सुभद्राकुमारी चौहान)

समर्पण

सूखी सी अधखिली कली है
परिमल नहीं पराग नहीं।
किन्तु कुटिल भौंरों के चुम्बन का
है इस पर दाग नहीं॥

तेरी अतुल कृपा का बदला,
नहीं चुकाने आई हूँ।
केवल पूजा में ये कलियां,
भक्ति भाव से लाई हूँ॥

प्रणय जल्पना चिन्त्य कल्पना,
मधुर वासनाएं प्यारी।
मृदु अभिलाषा विजयी आशा,
सजा रही थीं फुलवारी ॥

किन्तु गर्व का झोंका आया,
यदपि गर्व वह था तेरा।
उजड़ गई फुलवारी सारी,
बिगड़ गया सब कुछ मेरा ॥

बची हुई स्मृति की ये कलियां,
मैं बटोर कर लाई हूँ।
तुझे सुझाने तुझे रिझाने
तुझे मनाने आई हूँ ॥

प्रेम भाव से ही हो अथवा हो,
दया भाव से ही स्वीकार।
ठुकराना मत इसे जान कर,
मेरा छोटा सा उपहार ॥

बालिका का परिचय

यह मेरी गोदी की शोभा सुख सुहाग की है लाली,
शाही शान भिखारिन की है मनोकामना मतवाली।
दीप शिखा है अँधेरे की घनी घटा की उजियाली,
उषा है यह कमल भृङ्ग की है पतझड़ की हरियाली।
सुधाधार वह नीरस दिल की मस्ती मगन तपस्वी की,
जीवित ज्योति नष्ट नयनों की सच्ची लगन मनस्वी की।
बीते हुए बालपन की यह क्रीडा पूर्ण वाटिका है.
वही मचलना वही किलकना हँसती हुई नाटिका'

मेरा मन्दिर मेरी मसजिद करवट काशी यह मेरी,
पूजापाठ ध्यान जप तप है घट घट वासी यह मेरी।
कृष्णचन्द की क्रीड़ाओं को अपने आंगन में देखो,
कौसल्या के मात मोद को अपने ही मन में देखो।
प्रभु ईसा की क्षमा शीलता नबी मुहम्मद का विश्वास,
जीव दया जिनवर गौतम की आओ देखो इसके पास।
परिचय पूछ रहे हो मुझ से कैसे परिचय दूँ इसका,
वही जान सकता है इसको माता का दिल है जिसका॥

परिशिष्ट

परिशिष्ट

तुलसीदास

तुलसीदास का जन्म १५८६ विक्रमी में हुआ था। इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे तथा माता का नाम हुलसी था। इनका अपनी पत्नी पर अपार प्रेम था। तुलसी उस पर इतने अधिक आसक्त थे कि एक बार उसके मायके चले जाने पर वे बढ़ी नदी पार करके उसके पास पहुंच गये। स्त्री ने उस समय ये दोहे कहे:—

लाज न लागत आपु को दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम तामें जैसी प्रीति।
तैसी जौ श्रीराम महँ होति न तौ भवभीति॥

यह बात तुलसी के मन में चुभ गई और वे बनारस आ विरक्त बन गये। गुसाईं जी के हृदय में जो प्रेम का स्रोत बह रहा था अब तक उसका प्रवाह स्त्री की ओर था। इस घटना ने प्रेम की उस सरिता को श्रीराम के चरणों में बहा दिया।

ये अधिकतर काशी में रहा करते थे। वहां अनेक शास्त्रज्ञ विद्वान् इनसे आकर मिला करते थे। ये अपने समय के सब से बड़े भक्त और महात्मा माने जाते थे।

गुसाईं जी के स्नेहियों में रहीम, महाराज मानसिंह, नाभाजी और मधुसूदन सरस्वती कहे जाते हैं। इनकी रहीम के साथ समय समय पर दोहों में लिखा पढ़ी हुआ करती थी।

वि० सं० १६८० में काशी में श्रावण शुक्ला सप्तमी को असी और गङ्गा के सङ्गम पर ये गोलोक सिधारे।

इनकी अनेक कृतियों में रामचरित मानस सर्व श्रेष्ठ है। यह सर्वप्रिय ग्रन्थ उत्तर भारत के कोने-कोने में पाया जाता है। पठित हिन्दुओं का कोई ही घर ऐसा न होगा जिसमें इसकी एक प्रति न हो और उत्तर भारत का एक भी ऐसा व्यक्ति न होगा जिसकी जिह्वा पर इसकी एक न एक चौपाई न हो।

तुलसी की विशेषता—

(१) अन्य कवि जीवन के किसी एक पक्ष को लेकर चलते हैं— जैसे वीर काल के कवि उत्साह को; भक्ति काल के दूसरे कवि प्रेम और ज्ञान को; अलङ्कार काल के कवि दाम्पत्यप्रणय या शृङ्गार को। किन्तु तुलसी की वाणी मनुष्य के समस्त भावों

और व्यवहारों के अन्तस्तल में पहुँचती है। एक ओर तो वह व्यक्तिगत साधना के मार्ग में विराग पूर्ण शुद्ध रामभक्ति का उपदेश करती है, दूसरी ओर लोक पक्ष में आकर पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्यों का सौन्दर्य दिखाकर पाठकों को मुग्ध करती है।

(२) (अ) हिन्दू प्राचीन काल से विष्णु नारायण की भक्ति करते आ रहे थे। कालक्रम से यह भक्ति शाखा प्रशाखाओं में बँट गई। दक्षिण में रामानुज ने नारायण रूप विष्णु की पूजा करते हुए 'ओम् नमो नारायणाय' मन्त्र का उपदेश दिया। उत्तर भारत में रामानन्द ने 'ओम् नमो रामाय' इस मन्त्र का प्रचार किया। मुसलमानों की आततायिता से आतंकित हो, ऐहिक अभ्युदय से निराश हो जाने के कारण भक्त हिन्दू समाज पुराणों की विलासोन्मुख गाथाओं में रम रहा था। वह आचारान्वित धर्म को भुला धर्म के प्रकारों में फंस गया था। वह तपोनिष्ठा को दुरा राधा और कृष्ण के विलास का चितेरा बन रहा था। रामानन्द ने प्रकारवाद का खण्डन किया और समाज को आचार की चरमोन्नति का (जो श्रीराम के चरित्र में पूर्ण हुई थी) आदर्श दिखाया।

(आ) रामानन्द के उपदेश का पहला भाग, अर्थात् 'प्रकारवाद का खण्डन' कबीर में पूर्णता को प्राप्त हुआ और दूसरा भाग अर्थात् 'समाज को समन्वित तथा लोक संग्रहात्मक आचार का आदर्श दिखाना' तुलसी में परिपूर्ण हुआ। कबीर प्रकृत्या

मुसलमान था। उसने अवतार पूजा को एक प्रकार का आटोप समझ उसका खण्डन किया और जनता को परोक्ष की ओर चलाया। तुलसी ने विमनस्क समाज को 'निज इच्छा अवतरेहु प्रभु सुर द्विज गो महि लागि' इत्यादि शब्दों में सान्त्वना देते हुए अवतार पूजा का उपदेश दिया।

(३) कबीर ने जातिबन्धन का निराकरण कर हिन्दू और मुसलमानों को एक करने का प्रयत्न किया था। समाज ने उसके यथार्थ आशय को भुला उसके अक्षरों का पालन किया। परिणाम यह हुआ:—

'जे बरनाधम तेलि कुम्हारा।
स्वपच किरात कोल कलवारा॥
मूंड मुंडाय होहिं संन्यासी॥'

कि जिस के मन में आया वही संन्यासी बन समाज को मनमाने उपदेश देने लगा। कबीर का लोक संग्रह लोकविग्रह में परिणत होगया। तुलसी ने यह बताकर कि श्रीराम ने भीलनी के बेर खाकर भी वर्णव्यवस्था को बनाये रक्खा था समन्वयात्मक आचार का उपदेश दिया और भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली संकोचात्मक (ब्राह्मण) और विकासात्मक (क्षत्रिय) शक्तियों का अभूतपूर्व सामंजस्य स्थापित किया।

(४) तुलसी ने समाज को कृष्ण के विलास और शिव की एकान्त तपोनिष्ठा से हटा राम के प्रेमात्मक रम्य धर्म में प्रवृत्त

किया और जीर्ण हिन्दू जाति को शिवा जी के रूप में विष्णु के अवतीर्ण होने का आभास दिला उत्साहसम्पन्न बनाया। इसी बात में तुलसी की लोकोत्तर महत्ता है।

भाषा —

कबीर की भाषा टूटी फूटी थी। जायसी ने अवधी में कविता की थी। सूर ने अपना सूरसागर व्रजभाषा में लिखा था। तुलसी का उक्त दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। उनकी रामायण संस्कृत मिश्रित अवधी में लिखी गई है और विनय पत्रिका, गीतावली तथा कवितावली आदि व्रजभाषा में लिखी गई हैं।

पृष्ठ ३

खरभर—गड़बड़ाहट

भृगु-पतंगा—भृगुवंशरूपी कमल के सूर्य

बाज-लुकाने—जैसे बाज की झपट देखकर बटेर छिपे हों।

रिसराते—क्रोध से रक्त (लाल)

पृष्ठ ४

जेहि-खुटानी—जिसकी ओर वे सहज स्वभाव से हित समझ कर भी देख लेते हैं वह समझता है कि मानों मेरी आयु पूरी हो गई।

ढोटा—पुत्र

मार मदमोचन—कामदेव के मद को नष्ट करने वाला।

अनत—अन्यत्र

पृष्ठ ५

बिलगाउ—अलग हो जाय

त्रिपुरारि—शिव जी

कोही—क्रोधी

महिदेव—ब्राह्मण

गरभन-घोर=मेरा परशु गर्भ के बालकों को भी मार डालने वाला बड़ा भयंकर है।

पृष्ठ ६

इहां—नाहीं=यहां कोई कुम्हड़े की बतिया नहीं है जो तर्जनी अंगुली देख कर मर जाती है। कुम्हड़े को अंगुली दिखाते ही छोटे-छोटे फल झड़ जाते हैं। इस लिये उसका नाम छुईमुई है।

पा—चरण

भानु—कलंकू=सूर्यवंशरूपी पूर्ण चन्द्रमा का कलंक है।

खोरि—दोष

हटकहु—मना कर दो

तुम्ह—बोलावा=आप तो मानों काल को साथ ही लेते आये हैं और उसे बारम्बार मेरे लिये बुला रहे हैं।

पृष्ठ ७

मुनि—सूझि=परशुराम को हरी-हरी सूझती है। अथवा यहां हरि विष्णु अरई अड़े हैं। सामान्य शत्रु नहीं स्वयं विष्णु हैं। अथवा हरि अरई-हरा ही हरा दीखता है। नहीं जानते कि अब सूखने का मौका आ गया। अथवा स्वयं हरि शत्रु के रूप में दीख पड़ते हैं।

अजगव—महादेव का धनुष

अब—खोली=अब किसी व्यवहारी (साहूकार) को बुला लाइये।

सैन—इशारा

लषन उतर—भानु=लक्ष्मण की उत्तर रूपी आहुति पाकर परशुराम की क्रोधरूपी अग्नि को बढ़ते देख रघुवंश के सूर्य रामचन्द्र जल के समान ठंडे वचन बोले।

पृष्ठ ८

अयाना—अज्ञान

अचगरि—नटखटी

समसील—सम स्वभाव

जुड़ाने—ठण्डे हुए

काल—नाहीं=यह दुध मुहां नहीं, इसके मुँह में काल कूट विष है।

बैठिय-पिराने=खड़े खड़े पांव दुखने लगे होंगे।

मष्ठकरहु—बस चुप करो

नयन तरेरे—आंखों से डाटा

अनैसे—टेढा

पृष्ठ ६

बहइ न हाथु—हाथ नहीं चलता

गर्भ-घोर=इस कुठार की भयङ्कर गति को सुनते ही राजाओं की स्त्रियों के गर्भ गिर जाते हैं।

बाउ-कृपा=बाहरी कृपा। जैसी कृपा वैसी ही आपकी मूर्ति है।

करहु किन--क्यों नहीं करते

पृष्ठ १०

गुनहु-लखन कर=अपराध तो लक्ष्मण का और क्रोध हम पर। क्या कहीं सीधेपने से भी बड़ा कोई दोष है।

सरवर--बराबरी

देव एक-तुम्हारे=देव! हमारा तो धनुष ही एक गुण है, पर आप के परम पवित्र नौ गुण हैं। (नौ गुण शम, दम, तप, शौच, संतोष, ऋजुता, ज्ञान, विज्ञान, और आस्तिकता) अथवा हमें तो एक चांप वाले धनुष मात्र का बल है पर आप को ९ तार वाले यज्ञोपवीत का बल है। अथवा हमारा धनुष तो एक-गुण है (शत्रुवध) आप का यज्ञोपवीत नौ गुणवाला है। नौ का गुण ऐसा है कि १से गुणें तो ९, २ से गुणें तो १८। ९ के गुण में ९ ही बने रहते हैं। सारांश यह कि आप कुछ भी कैसा ही करें, ब्रह्म तेज के आगे सब ज्यों का त्यों है।

पृष्ठ ११

चतुरंग—चतुरंगिणी, रथ, हाथी,

घोड़े और प्यादे।

समर जग्य–युद्धरूपी यज्ञ

विप्र के भोरे–ब्राह्मण के भरोसे

अहमिति–मानों सारे जगत् को जीत लिया, ऐसा अहंकार करके खड़ा है।

प्रचारई–न्यौते।

सकाना–शंका करना (डरना)

विप्रबंस–ब्राह्मण वंश का यह महत्त्व है कि-जो आप से डरे, वह और सब जगह से निडर हो जाता है।

रघुबंस-भानू=रघुवंशरूपी कमल वन के सूर्य।

गहन-कृसानू=गहरे राक्षसकुल के जलाने के लिये अग्निस्वरूप।

वचन-नागर=वचनों की रचना में अति निपुण आप की जय हो।

महेस-हंसा=महादेव के मन रूपी मानसरोवर के हंस।

पृष्ठ १४

सुनि-राती=देवताओं की प्रार्थना सुनकर सरस्वती खड़े खड़े पछताने लगी कि हाय ! मैं कमल के वन के लिये पाले की रात बनती हूं।

खोरी–बदनामी

बिबुध-पोची=देवों की बुद्धि पोच है।

गई-फेरि=सरस्वती उसकी बुद्धि को फेर गई।

देखि-भांती=जिस प्रकार कुटिल भीलनी शहद के छत्ते को लगा देख कर मौक़ा ताकती है कि इसको किस प्रकार लूं।

उसासू–लंबे सांस

गालु बड़ तोरे–तेरे बड़े गाल हैं; तू बड़ी बढ़ कर बोला करती है।

पृष्ठ १५

गालु करब=मुंहजोरी करूं

भयउ-दाहिन=कौसल्या के लिये विधाता बहुत दाहिना (अनुकूल) है।

नींद-तुराई=तुम्हें नींद और तोशक

तकिये से सजी सेज प्यारी लगती है।

रहु अरगानी—चुप रहो।

पृष्ठ १६

रउरेहिं—आपको

रहसी-कावी=दासी मंथरा अपना दांव लगा समझ कर प्रसन्न हो गई।

सजि-बोली=बहुत प्रकार की बात बना (छील छाल) किसी तरह अपने ऊपर भरोसा जमवा कर मंथरा आगे ऐसे वचन बोली कि मानों उन वचनों से उस समय अयोध्या के लिये साढ़साती (साढे सात वर्ष की शनि की दशा) आगई है।

भानु-सुभाऊ=जैसे सूर्य कमल के समूहों को पालने वाला है, पर बिना पानी वही सूर्य उन्हीं कमलों को जला डालता है वैसे ही कौसल्या तुम्हारीजड़ को उखाड़ना चाहती है।

उपाय रूपी श्रेष्ठ जल से इसे रोको।

पृष्ठ १७

सवति--सौतें

मोह सुठि नीका=मुझे और भी अच्छी लगती है

सुठि--सुष्ठु

पृष्ठ १८

कुबरी-चांपी=तब कूबरी मन्थरा ने अपनी जीभ दांतों के नीचे दबा ली।

जिमि-कुकाठू=जिस प्रकार गठीला टेढ़ा लक्कड़ नमता नहीं इसी तरह कैकेयी अपने हठ से नहीं हटी।

पृष्ठ १६

कुबरी-टेई=कूबरी ने कैकेयी को कुबलि का पशु बनाकर अपनी कपटरूपी छुरीको हृदयरूपी पत्थर पर टेया (शान दी)।

माहुर--विष

याती--धरोहर

चषपूतरि--आंख की पुतली

पृष्ठ २१

दलकि-तोरू=यह सुनते ही उसका कठोर हृदय दहल उठा, मानों किसी पके हुए बालतोड़ को ठेस पहुँची हो।

ऐसउ-गोई=ऐसी पीड़ा को भी कैकेयी ने हँसकर छिपाया।

पृष्ठ २३

आगे-बनाई=राजा ने अपने समक्ष क्रोध से जलती हुई कैकेयी को देखा। मानों वह क्रोधरूपी तलवार को म्यान से बाहर निकालकर खड़ी है, जिस तलवार पर कुबुद्धिरूपी मूठ है और निष्ठुरता धार है और कूबरी मंथरा मानों उसकी धार धरी गई है।

छूछे—निष्फल

पृष्ठ २४

पाप-जोई=वह नदी पाप रूपी पहाड़ से पैदा हुई है; उसमें क्रोधरूपी जल भरा है, वह देखी नहीं जाती।

दोउ-प्रचारा=दोनों वर इस नदी के किनारे हैं, कठिन हठ ही इसकी धारा है, मंथरा के वचनों का प्रचार ही भंवर है।

पृष्ठ २५

हसब ठठाइ—खिलखिलाकर हंसना और गाल फुलाना दोनों काम एक साथ कैसे हो सकते हैं।

होइ-रौताई=शूरता भी चाहते हो और कुशल क्षेम भी चाहते हो।

गोई—छिपा कर

पृष्ठ २६

मारसि-लागी=तू बाज के लिये गौ को मारना चाहती है। अथवा सिंह के बच्चे (नहारुह) के लिये गौ को मारना चाहती है।

भिनुसारा—प्रातः काल

पृष्ठ २८

सतिभाऊ—सद्भाव

पृष्ठ ३४

खभारू—चिंता

प्रतीति–भरोसा

पृष्ठ ३५

कोटि-कुटिलाई=करोड़ों प्रकार की कुटिलताओं की कल्पना करके अथवा करोड़ों प्रकार की कुटिलताएं करके (कल्प=करना)

गजाली–हाथियों की पंक्ति

ससि-समान=चन्द्र ने देवों के गुरु बृहस्पति की स्त्री तारा के साथ प्रेम किया था। नहुप ने अपनी पालकी ब्राह्मणों से उठवाई थी। राजा बेन जन्म से ही पतित तथा अभिमानी था। पिता के दुखी होकर वन चले जाने पर, गद्दी पा उसने प्रजा पर अत्याचार किये। अन्त में ब्राह्मणों ने उसे शाप दे कर भस्म कर दिया।

कोहाब--रूठना

पृष्ठ २२

कुमत-खोलो=मानों किसी कुत्सित पक्षी का कुलह (पर्दा या ढक्कन) खोला गया हो। शिकारी चिड़ियों को शिकार पर उड़ाने के समय उनकी टोपी खोलदी जाती है।

सचानबन--बटेरों का समूह

नेई--नीव

मनुभांखा--मानों क्रोधमूर्ति होकर कहा

रिपु-काऊ=कभी किसी को शत्रु और ऋण नाम के लिए भी शेष नहीं रखने चाहिए।

पृष्ठ ३६

जो सेई=जिन्होंने साधु सभा का सेवन नहीं किया वे राजमद का आचमन लेते ही मत वाले हो जाते हैं।

तिमिर=चाहे अंधेरा तरुण (मध्याह्न के) सूर्य को निगल जाय, आकाश मार्ग बादलों में मिल जाय, अगस्त्य चुल्लू भर पानी में डूब जाय और पृथ्वी अपनी स्वाभाविक क्षमा को छोड़ दे।

पृष्ठ ३७

सगुनपीर=सद्गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिला कर ब्रह्मा सृष्टि की रचना करता है।

पृष्ठ ४३

गोगोचर--इन्द्रियों का विषय

तीनिगुण--सत, रज और तम

पृष्ठ ५०

कीधौं--शायद मेरा नाम तेरे कानों में नहीं पड़ा

पृष्ठ ५१

रूख--वृक्ष

मयंक--चन्द्रमा

पृष्ठ ५४

कपिपोत--बन्दर के बच्चे

अनल--अग्नि

ऐसिहु--ऐसी बुद्धि होने पर भी तेरी छाती नहीं फटती

पृष्ठ ५५

लघु धावन--छोटा सा दूत

पृष्ठ ५६

बक्रउक्ति--अंगद ने टेढ़ाई रूपी धनुष पर बचन रूपी बाण रख कर शत्रु के हृदय को बींध दिया। उन बाणों को वीर रावण प्रत्युत्तर रूपी संडासी से निकालने लगा।

पृष्ठ ५६

माषा--खिसियानापन

हयसाला--घुड़साल

पृष्ठ ५७

हरगिरि--कैलाश पर्वत

बरियाई--जबरदस्ती

बर्बर--बकवादी

खर्व--तुच्छ

बंगा--व्यंग्योक्ति कहने वाले

धन्वी कामु--कामदेव साधारण धनुर्धारी कैसे हैं?

पृष्ठ ५८

उपल--पत्थर

परजरा--जल उठा

पृष्ठ ५६

बसीठ--दूत

साषि--साक्षी

जरठमति चोट--बुढ़ापे की सठियाई

समझ से

पृष्ठ ६०

कटकटान—कटकटाता हुआ

लूक—उल्कापात

पृष्ठ ६२

लबारा—लफङ्गा

पृष्ठ ६४

मराल—हंस

पृष्ठ ६५

जोय—जाया, भार्या, स्त्री

सन—से

पीन—पुष्ट

द्रवहु—कृपा करना

बलित—सिकुड़न पड़ा हुआ (कलित पाठ अच्छा प्रतीत होता है।

कलित—सुन्दर

पृष्ठ ६६

उपल—पत्थर, ओले

पुहुमी—भूमि

पाहन—पाषाण

पृष्ठ ६८

चंग—पतंग

पृष्ठ ६९

ऐन—ठीक (आयन-घर, स्थान)

पृष्ठ ७०

माहुर—विष

पृष्ठ ७१

कुमाच—रेशम

रैन—रात्रि

पृष्ठ ७३

भूभुरि डाढे—भूभल में झुलसे हुए

कबीर

हिन्दी सन्त कवियों में कबीरदास सर्वश्रेष्ठ हैं। इनका जन्म विक्रम सम्वत् १४५६ में माना जाता है। इनकी उत्पत्ति के विषय में अनेक किम्वदन्तियां प्रचलित हैं। कहते हैं कि काशी में स्वामी

रामानन्द का एक भक्त ब्राह्मण था जिसकी विधवा कन्या को स्वामी जी ने भूल से पुत्रवती होने का आशीर्वाद दे दिया। फल यह हुआ कि उसे एक बालक उत्पन्न हुआ जिसे वह लहरतारा के ताल के पास फेंक आई। अली या नीरू नामका एक जुलाहे ने उसे अपने घर लाकर पाल लिया। यही बालक आगे चल कर कबीरदास प्रसिद्ध हुआ।

कबीर पढ़े लिखे कम थे पर गुणे बहुत अधिक। कबीर की वाणियों का संग्रह बीजक कहाता है। रमैनी, सबद और साखी इसके यह तीन भाग हैं।

इनकी शिक्षाओं से प्रभावित होकर बहुत से लोग इनके शिष्य बन गये थे। इनमें हिन्दू औ मुसलमान दोनों थे। अब भी भारत में ६ लाख के लगभग कबीरपन्थी विद्यमान हैं।

कबीर ने मगहर में शरीर त्याग किया, जहां इनकी समाधि अब तक बनी हुई है। इनका मृत्यु काल सम्वत् १५७५ माना जाता है।

कबीर ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा के नेता थे। उस समय की परिस्थिति शोचनीय थी। देश पर मुसलमानों का आतङ्क छा जाने के कारण वीर गाथाओं का ह्रास हो चुका था। हिन्दू जनता ने ऐहिक अभ्युदय से निराश हो परमात्मा को याद किया। किन्तु उसने उनकी न सुनी। शङ्कर का निर्गुण ब्रह्म उपाधियोंसे मुक्त था। विशुद्ध ब्रह्म से किसी प्रकर की सहायता न पाकर त्रस्त हुआ समाज अनीश्वरवाद के गर्त में गिरा ही चाहता था कि बनारस के स्वामी रामानन्द ने (रामानुज के सगुणोपासनात्मक भक्तिसम्प्रदाय का

आश्रय लेते हुए) सगुण भक्ति का उपदेश दे उसे पतन से बचाया। रामानन्द की शिष्य परम्परा में एक ओर कबीर हुए, जिन्हों ने ज्ञानाश्रयी भक्ति शाखा का उपदेश देकर नवीन सम्प्रदाय खड़ा किया और दूसरी ओर तुलसीदास हुए जिन्होंने रामभक्ति का उपदेश दे जनता को संग्रहविग्रहात्मक उपदेश की ओर चलाया।

कबीर ने क्या किया ?

(१) हिन्दू जाति धर्मप्राण है। इस्लाम धर्मप्रेमी है। दोनों जाति धर्म के नाम पर एक दूसरे का संहार कर रही थीं। हिन्दुओं के धर्म का आधार परमात्मा है और मुसलमानों के धर्म का आधार खुदा। कबीर ने परमात्मा और खुदा की सत्ता को एक बता हिन्दू और मुसलमानों को एक करने का स्तुत्य प्रयत्न किया।

(२) विश्वजनीन ऐक्य के मार्ग में प्रबलतम विघ्न हिन्दुओं की वर्णव्यवस्था थी। हिन्दू समाज में वैदिक काल से दो शक्तियां काम करती आ रही थीं। पहली संकोचात्मक अर्थात् ब्राह्मण, जो लोक संग्रह की ओर अधिक ध्यान देते हुए वैदिक मन्तव्यों को परिमित केन्द्र तक सीमित रखना चाहते थे और दूसरी विकासात्मक अर्थात् क्षत्रिय जो विश्वजनीन ऐक्य की ओर अधिक ध्यान देते हुए वैदिक सिद्धांतों का सर्वत्र प्रचार करना चाहते थे, और इस प्रकार वर्णव्यवस्था को पहले की अपेक्षा शिथिल तथा मनोरम बनाना चाहते थे। दोनों शक्तियों का

पारस्परिक संघर्ष वसिष्ठ विश्वामित्रादि के युद्धों में प्रतिफलित है। कबीर ने वर्णव्यवस्था को तोड़ विश्वजनीन भ्रातृत्व का मार्ग दिखाया।

(३) संसार यथार्थ धर्म पर ध्यान न दे सदा से उसके प्रकार तथा रिवाजों को पूजता आया है। कबीर ने सब प्रकार के 'प्रकारवाद' का खण्डन करके मन्दिर और मसजिदों के भेद को हटाया और प्रेममय यथार्थ धर्म का व्याख्यान किया।

(४) कबीर ने अध्यात्मपक्ष में निर्गुण ब्रह्म को प्रेमरूप ठहराया, किन्तु उपासना के लिये उस में गुणों का आरोप किया। शंकर ब्रह्म को एकान्ततः निर्गुण मान कर भेदमय जगत् को असत्य तथा कल्पनामात्र बताता है; इसके विपरीत कबीर पारमार्थिक चैतन्य को प्रेममय बता उसको जड़ और चेतन इन दो अस्थायी किन्तु सत्य भेदों में विकसित करता है।

(५) कबीर ने सदाचार पर बल देते हुए लौकिक जीवन को अत्यन्त सरल, सरस, निर्मल तथा स्वाभाविक बनाया।

(६) कबीर ने नाम, शब्द तथा सद्गुरु की महिमा गाते हुए मूर्तिपूजा, अवतारवाद तथा कर्मठता का तिरस्कार किया।

(७) सूक्ष्म ब्रह्म सर्वत्र विद्यमान है किन्तु प्रत्यक्ष नहीं होता। इस बात से उत्पन्न हुए प्रेम तथा भय में रहस्यवाद अथवा भावयोग का जन्म है। यह वेदों तथा उपनिषदों में बीजरूपेण विद्यमान है। कबीर ने उसका प्रचार किया।

पृष्ठ ७८

सबूरी--सन्तोष

खरक--खाक, मिट्टी

पृष्ठ ७९

जूझना–लड़ना

नामसमसेर–राम नाम की तलवार

पृष्ठ ८०

नेवाजई–शरण में लेगा

पृष्ठ ८१

निहाल–समृद्ध, प्रसन्न

अम्बर–आकाश

राता–रक्त, अनुरागी

घट–अन्त:करण

घट्ट–घाट

पृष्ठ ८२

पटतर–उपमा

हरखिया–प्रसन्न होना

पृष्ठ ८३

ऊबरा–उद्धृत हो गया, पार हो गया, सफल हो गया

बधावा–माङ्गलिक उपचार

मूए–मर गये

झूर–सुरझुर कर

खोजी–प्रेम की ढूँढ में फिरने वाला, भक्त

मण्ड मैदान में–युद्ध क्षेत्र में मस्त होना

पृष्ठ ८४

सिलाह–कवच

पृष्ठ ८५

जात–जन्म, सत्ता

पृष्ठ ८६

नौबत–वाद्ययन्त्र, नगाड़ा आदि

ठाम–स्थान

झोला–गरम और तेज हवा

आधा परधा–थोड़ा बहुत

पृष्ठ ८७

गादुर–चमगीदड़

रांचिया–प्रसन्न रहना, मस्त रहना

छीजै–क्षीण होना

जियरा–जीव

पाहुना–अतिथि

टांडा–बनजारे का सामान

पाहरू–प्रहरी, रखवाला

मनसा–मनोरथ

पृष्ठ ८८

अकुल—जिसका कुल (वंश) नहीं परमात्मा

हुरुए—हलके

परि गये—पार हो गये

बेरिया—घड़ी, समय

पृष्ठ ८६

लाहा—लाभ

परिया—सरा, पूरा हुआ

दीदार—दर्शन

शब्द—(शब्द ब्रह्म) ओम् अथवा राम शब्द

पृष्ठ ६०

अहम्—अहंकार

सूत—तागा

भवज र सागर

पृष्ठ ६१

कथीर—रांगा

पृष्ठ ६४

उडुगन—तारे

पृष्ठ ६६

दियना—दीपक

जोग जुगत—योग समाधि (कर्म योग)

अनहद—असीम शब्द, ओं, जिस की कोई सीमा नहीं। शब्द-ब्रह्म

अमल—मद, मादक वस्तु

सुरत किये—ध्यान करने पर

दुचिताई—बुराई

गनिका—वेश्या

सूरदास

जिस प्रकार रामचरित गान करने वाले भक्त कवियों में तुलसीदास जी का स्थान सर्वोच्च है इसी प्रकार कृष्णचरित गाने वाले भक्त कवियों में महात्मा सूरदास जी का। वास्तव में ये हिन्दी-

साहित्यगगन के सूर्य और चन्द्र हैं।

सूरदास का जन्मकाल १५४० के लगभग ठहरता है। 'चौरासी-वैष्णव' की टीका के अनुसार इनकी जन्मभूमि सनकता (रेणुका-क्षेत्र) गांव है, जो मथुरा से आगरे जाने वाली सड़क पर है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे और इनके पिता का नाम रामदास था। सूरदास जी गऊघाट (आगरे से कुछ दूर मथुरा आगरे के बीच) पर रहा करते थे। वहीं वल्लभाचार्य से इन्होंने दीक्षा ली। गुरु की आज्ञा से इन्होंने श्री भागवत की कथा को पदों में गाया और वह ग्रन्थ सूरसागर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं कि सूरसागर में सवा लाख पद थे, किन्तु सम्प्रति ५-६ हज़ार पद ही मिलते हैं।

इनकी मृत्यु, पारासोली गांव में गोसाईं विट्ठलनाथ जी के सामने, सम्वत् १६२० के लगभग हुई।

कहा जाता है कि सूरदास जन्मान्ध थे। किन्तु उनके वर्णन को देख कर मानना पड़ता है कि वे जन्मान्ध कदापि न थे, पीछे से भलेही अन्धे हो गये हों।

सूरदास की कविता—

"सरलता, ऐन्द्रियता और भावमग्नता" कविता के इन तीन लक्षणों में से सूरदास की कविता में पहिले दो लक्षण पूर्णतया विद्यमान हैं। सरलता, वात्सल्य और शृङ्गार के क्षेत्र में जहां तक सूरदास की दृष्टि पहुँची है वहां तक किसी कवि की नहीं। इस विषय में हम कह सकते हैं कि:—

"सूरोच्छिष्टं जगत् सर्वम्"

सूरदास संयोगात्मक शृङ्गार द्वारा मनुष्य की सरल, स्वाभाविक तथा रुचिर वृत्तियों का विकास कर, और वियोगात्मक शृङ्गार द्वारा उन वृत्तियों के सामायक मलों का निरास करते हुए मनुष्य को प्रेम के सुरभित उपवन में रमा कर श्याम में विलीन करना चाहते थे। इसीलिए उनकी कविता में शृङ्गार की सुषमा है और माधुर्य की पराकाष्ठा है। उनके प्रत्येक शब्द में प्रेम का पराग है, चाह की कसक है, और उत्सुकता का सीत्कार है।

तुलसीदास कावता को सरलता और ऐन्द्रियता में ही न समाप्त कर उसका कविता के तृतीय लक्षण, अर्थात् भावमयता में पर्यवसान करते हैं। रामायण में जीवन के अन्दर होने वाले भावों के क्रूर संघर्ष द्वारा परिपक्व हो आत्मा राम के प्रेम का अधिकारी बनता है; सूरसागर में वह अपनी रुचिर वृत्ति तथा कोमल भावनाओं के अनवरत उत्थान और पतन से इस ध्येय को प्राप्त करता है। तुलसी और सूर की कविता में यही मुख्य भेद है।

पृष्ठ ६८

पेखत—देखना

लटकन—झुमका (आभरण विशेष)

पृष्ठ ६६

भू—पृथ्वी (लोक)

होड़—स्पर्धा

कुलहि—सिर पर पहरने का कपड़ा

मघवा—इन्द्र

चिकुर—ठोड़ी

कंज—कमल

पृष्ठ १००

अलि अवली—भ्रमर पंक्ति

भाल—मस्तक

भौम—मंगल

दुरत—छिपना

विज्जु छुटाई—विद्युत् की छुटा

अलम अलम जलपाई—टूटे फूटे शब्द बोलना

रेणु—धूलि

सुवन—सुत-पुत्र

अरबराय—घबड़ाकर

पृष्ठ १०१

द्वैक—एक दो

महरि—मुखिया की स्त्री यशोदा

गुहत—गूंथते हुए

बलकी बेनी—बंट वाली चोटी

पृष्ठ १०२

हाऊ—हव्वा

झाऊ—झाऊ के वृक्ष

व्याल—सर्प

पृष्ठ १०३

सुरत—याद

शंखासुर—एक नागराज

कमठ—कछुआ

सुरराऊ—सुर राज

गरबाऊ—अभिमान करना

अगाऊ—अग्र भाग

पृष्ठ १०४

परग—पग, डिग

परसाऊ—स्पर्श करना, छूना

छार—छार, धूलि

डरपाउ—डरपी, डरी

पृष्ठ १०५

भारि बहाऊ—भार नष्ट किया

निगम—वेद

पृष्ठ १०६

वज्रघातनि—वज्र की चोट से

पृष्ठ १०७

मघवा—इन्द्र

भहराय—जोर से, दलों में, बहुत बड़ी संख्या में

कादर—कदर्य, डरपोक

पृष्ठ १०८

पिराय- दुखते हैं

पत्याहि—भरोसा करती

रिसाय—नाराज होकर

रिंगाय—पिदा पिदा कर

पृष्ठ १०६

छगन मगन—काका, (छागल बकरी का बच्चा)

मधुपुरी—मथुरा

पृष्ठ ११०

कमलनैन—कृष्ण, कमल जैसी आंखों वाला

मथानी—मन्थन रई और हंडिया

बहुरेउ—फिर

बासर रैन—दिन रात

हिलराऊं—हिलोर दूँ

असु—प्राण

धर—धरा, भूमि

अधर वदन—ओठ और मुँह

फेंट—कमर बन्द, कटिबन्ध

चक्रित—चकराई हुई

पृष्ठ १११

विषान—सींग का बाजा

अबेर सबेरो—देर और जल्दी थोड़ा बहुत ठहर कर

धैया—(गौ) का दूध

पृष्ठ ११२

करत अठान—सताना, पीड़ा देना

पृष्ठ ११३

पहुनई सूतर—मेहमानी की रीति

प्रतिपार—पालन, पोषण

अम्बर—आकाश

पृष्ठ ११४

कुशलात—कुशलता, क्षेम

बारे हीकी—बचपन हीकी

टेय—आदत

छलछेव—धोखे की मार

पृष्ठ ११५

कानि—लज्जा, संकोच

पजरे पर—प्रज्वलित पर, जले पर

अधारी—आधार (भस्म आदि के आधार पर जीवन बिताना)

आराधन मौन—मौन साधन

पृष्ठ ११८

अघाये—तुष्ट

चोलना—चोला

रसाल—रसीला, मधुर

अमभो ये मन—संशयित तथा भीत मन

पखावज—मृदङ्ग

घट—अन्तःकरण

काछि—लांग, धोती का अन्तिम छोर, (समीप)

अनत—अन्यत्र

अकृती—दुष्कर्मी

विरद्—उपाधि

हौं—मैं

सेंतों—बिना मोल, बिना दाम

पृष्ठ ११६

अजामिल—यह ब्राह्मण प्रथम अवस्था में सच्चरित्र था, किन्तु पीछे से कुसंगति में पड़ दुराचारी हो गया। दासी के पेट से इसके दस पुत्र थे। इनमें से ज्येष्ठ का नाम नारायण था। मरते समय उसने अपने पुत्र नारायण को पुकारा, इसी कारण विष्णु के दूत इसे विष्णुलोक में ले गये।

गारो—गर्व (क्रोध)

भुवंग-भुजंग, सांप

खर—गधा

अरगजा—सुगंधित द्रव्य विशेष

पाहन—पाषाण

अरसात—अलसात, आलस्य करना

पृष्ठ १२०

पैहो—(प्राप्स्यसि) प्राप्त करोगे

बूड़त—डूबत, डूबना

गुंजा—चोंटली

परसत—स्पर्श करते हुए

जल झांई—जल में पड़ने वाली प्रतिच्छाया

फँदाई—फँदे में फँसना

पृष्ठ १२१

हंस—आत्मा

बुढानी—जराशील

सिरानी—शीर्ण (निर्बल) हो गई

शार्ंग पानी—विष्णु

नरोत्तमदास

ये सीतापुर जिले के बाड़ी नामक क़सबे के रहने वाले थे।

शिवसिंह सरोज में इनका सं० १६०२ में वर्तमान रहना लिखा है। इनका सुदामा चरित अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें घरेलू दारिद्रय का मार्मिक वर्णन है। यह ग्रन्थ छोटा सा है किन्तु इसकी रचना अत्यन्त सरस और हृदयग्राहिणी है। भाषा परिमार्जित और सुव्यवस्थित है।

पृष्ठ १२२

वैजयिनी माला—पंचरंगी माला, भगवान् का हार

सगरे—सकल

तिय—स्त्री

पृष्ठ १२३

पदपंकज—चरण कमल

कोदौं—अन्न विशेष

समा—सांवक

हौं—मैं

सिसिआतहि—सिसियाते हुए

हठौती—हठ करती

पठौती—पठाती, भेजती

कठौती—लकड़ी की परात

ठक—ठोक पीट, रट

छदा—छकड़ा

अटा—बुर्ज

छानी—छप्पर

पृष्ठ १२४

अगत्रई—पहले ही

सरसाइये—सरस बनाइये

झक—ठक

पृष्ठ १२५

हेरे—देखने पर

छड़िया—द्वारपाल, दंड हाथ में लिये हुए

नेरे—नेड़े, पास

भौन—भवन

धाय—दौड़ कर

पाय—पांव

गौन—गवन, गमन

पृष्ठ १२६

पगा—पगड़ी

झगा—चोगा

उपानह—जूती
बिबायन—बिवाई
जोये—देखे
त्रिय—स्त्री
चांपि—रखकर

पृष्ठ १२७
भीने—मिश्रित
जीरण पट—जीर्ण कपड़ा

पृष्ठ १२८
गयन्द—हाथी

रहीम (अब्दुर्रहीम खानखाना)

रहीम साहब अकबर के अभिभावक प्रसिद्ध मुगल सरदार बैरम खां खानखाना के पुत्र थे। इनका जन्म संवत् १६१० में हुआ था। ये संस्कृत, अरबी फारसी के पूर्ण विद्वान् और हिन्दी के मर्मज्ञ कवि थे। दान में तो ये अपने समय के कर्ण थे। इनके यहां से कभी कोई कोरा नहीं गया। गंग कवि को इन्होंने एक बार ३६ लाख रुपये दे डाले थे। अकबर के समय में ये प्रधान सेना-नायक और मंत्री थे और अनेक बड़े बड़े युद्धों में भेजे गये थे।

ये जहांगीर के समय तक विद्यमान थे। युद्ध में धोखा देने के अपराध में इनकी जायदाद जब्त हो गई और इनके अंतिम दिन आर्थिक कष्ट में बीते। अपनी अकिंचनता का नंगा चित्र उन्होंने इन दोहों में उतारा है:—

'तब ही लों जीवो भलो दीबो परै न धीन ॥
ये रहीम दर दर फिरैं मांगि मधू करि खाहिं।
यारो यारी छोड़ दो अब रहीम वे नाहिं ॥'

इनका तुलसीदास के साथ प्रेम था। रहीम के दोहे वृन्द और गिरधर के पद्यों के समान कोरी नीति के पद्य नहीं हैं। उनके भीतर से एक उन्नत तथा सच्चा आत्मा झांक रहा है। रहीम को संसार के यथार्थ चित्र में ही कवित्व के लिये पर्याप्त सामग्री मिल जाती थी। इनका बरवै नायिका भेद कल्पना का चित्र नहीं प्रत्युत भारत के प्रेम जीवन का यथार्थ प्रतिरूपण है। तुलसी की नाईं रहीम का भी भाषा पर आधिपत्य था। ये व्रज और अवधी, पछिमी और पूरबी—दोनों भाषाओं में रम्य कविता रचते थे।

रहीम की मृत्यु संवत् १६८२ में हुई। इनके ग्रन्थों में रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका भेद, शृङ्गार सोरठ, मदनाष्टक, रासपंचाध्यायी, नगर शोभा, (फुटकल बरवै, फुटकल कवित्त, सवैये) आदि प्राप्य हैं।

पृष्ठ १२९

रज—धूलि

मुनिपत्नी—अहल्या

पृष्ठ १३०

रस—आनन्द, मस्ती

सलोने—लावण्य पूर्ण, सुन्दर

दीपक दशा—दीपक की बत्ती

तरैयन—तारों को

बडरी—बड़ी

पृष्ठ १३१

घूर—कूड़ा डालने की जगह

बारे—बाल्य काल, जलाने पर

बढ़े—बढ़ जाने पर, बुझ जाने पर

पृष्ठ १३२

दही मही—दही की छांछ

भीर—कष्ट

गोइ—छिपा कर

पृष्ठ १३३

छोह–स्नेह

गांस–शस्त्र का अगला हिस्सा

गुन–(१) गुण (२) रस्सी

दिवान–मंत्री

मृगया–शिकार

पृष्ठ १३४

बाइ–(१) वायु (२) प्राण

उनत–उदय होना

अथवत–अस्त होना

नखत–नक्षत्र

पृष्ठ १३५

कंज–कमल

पृष्ठ १३६

बरैंगो–बढैगो

हूक–चबक, पीडा

रसखान

ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इन्होंने 'प्रेम वाटिका' में अपने को शाही वंश का बताया है। ये कृष्ण के सच्चे भक्त और विठ्ठलनाथ जी के कृपापात्र थे।

ये आरंभ ही से प्रेमी थे। वही प्रेम अंत में जाकर अत्यन्त गूढ भगवद्भक्ति में परिणत हुआ।

इनका रचनाकाल संवत् १६४० के उपरान्त ही माना जाता है।

इनकी व्रजभाषा, शुद्ध, स्वच्छ, चलती, सरस और शब्दाडम्बर मुक्त होती थी। इस विषय में इनकी कवि घनानन्द के साथ तुलना की जाती है।

पृष्ठ १३६

बेन—वाणी

अनुजानी—अनुगामी

रसखान—कवि का नाम, रस का कोष

मानसं—मन, यदि मेरी इच्छा चले तो

पुरंदर धारन—इन्द्र की धाराएं, वर्षा

खग—पत्ती

पृष्ठ १३८

रिचा—मन्त्र

पलोटत-चापत=दबाना

छछियां—छाछ भरने का छोटा बरतन

गणिका—वेश्या

पृष्ठ १३९

कछौटी—काछनी, लुंगी

पृष्ठ १४०

पंचानल—पांच अग्नि

बयार—वायु, प्राणायाम

बिहारी

रीतिमार्गी कवियों में बिहारी सर्व श्रेष्ठ हैं। इनका जन्म संवत् १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर गांव में हुआ और मृत्यु विक्रमी संवत् १७२० में हुई। इनकी बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती और तारुण्य अपनी ससुराल मथुरा में।

ये जयपुर के मिर्ज़ा राजा जयसाह के दरबार में रहा करते थे। कहा जाता है कि जब बिहारी जयपुर पहुंचे उस समय महाराज अपनी छोटी रानी के प्रेम में इतने अधिक लीन रहते थे कि उन्हें राजपाट की सुधबुध जाती रही थी। इस पर सरदारों की सलाह से बिहारी ने महाराज की सेवा में निम्न लिखित दोहा भेजा—

नहिं परागु नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बँध्यो आगे कौन हवाल॥

दोहे को पढ़ते ही महाराज बाहर निकले और तभी से बिहारी का मान बढ़ा। महाराज ने बिहारी को इसी प्रकार के सरस दोहे बनाने की आज्ञा दी। बिहारी दोहे रच रच कर सुनाने लगे और उन्हें प्रति दोहे पर एक एक अशरफी मिलने लगी। इस प्रकार सात सौ दोहे बने, जो संगृहीत हो कर बिहारी सतसई के नाम से प्रख्यात हुए।

(अ) अत्यन्त संक्षिप्त, सरस तथा व्यंजक भाषा में शृङ्गार का आलंकारिक वर्णन करने वाले कवियों में बिहारी का स्थान सब से ऊंचा है।

(आ) इनकी सतसई में मर्मस्पर्शी खण्ड दृश्यों का चुभता वर्णन करने वाले ७०० दोहों का संग्रह है। इसकी अनेक टीकाओं में कृष्ण कवि लल्लूजीलाल, सरदार कवि तथा सूरति मिश्र की टीकाएं प्रसिद्ध हैं। बा० जगन्नाथ दास ने बिहारी का सुन्दरतम संस्करण प्रकाशित किया है।

विशेषता:—

(इ) विभाव, अनुभाव तथा सात्त्विक भावों के नपेतुले विदग्ध वर्णन में बिहारी अद्वितीय हैं। नायिकाओं के भ्रूविक्षेपादि के वर्णन में उसने कमाल किया है। सुकुमारता तथा प्रेम की पीर के चित्रण में वह अतिशयोक्ति से काम लेता है।

उसने रस के आसार को दोहों की गगरी में भर कर उन्हें कहीं कही क्लिष्ट बना दिया है। अलंकारों की योनना में निपुणता दिखाई है। अभिमत देश काल चन्द्रादि उद्दीपन विभावों की भावना भी बिहारी में पटुतम है।

भाषा आदिः—

(इ) बिहारी ने व्रजभाषा में कविता की है। कहीं कहीं बुन्देल खण्डी तथा फारसी के शब्दों का प्रयोग भी किया है। विरल रूप से शब्दों को तोड़ा मरोड़ा भी है, परन्तु भूषण आदि के ऐसा नहीं। चलती होने पर भी इसकी भाषा साहित्यिक है। इसका वाक्यविन्यास सुव्यवस्थित तथा कसा हुआ है।

(उ) बिहारी ने ऊंचे तथा बारीक खयालों को अतिशयोक्ति द्वारा प्रस्तुत किया है। यमक, स्वभावोक्ति, उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि का प्रयोग प्राञ्जल है।

(ऊ) विशुद्ध काव्य के अतिरिक्त बिहारी ने नीति संबन्धी सूक्तियां भी कही हैं। शृङ्गार की पुट इन में भी महकती है।

पृष्ठ १४१

भवबाधा—सांसारिक विघ्न

झाईं—परछाईं, आभा, (२) झलक, (३) ध्यान

स्यामु—(१)श्यामवर्ण कृष्ण, (२) कृष्णचन्द्र, (३) पातक आदि

हरितदुति—(१)हरे रङ्ग वाला, (२) प्रसन्न बदन, (३) हतप्रभ

इस दोहे के तीन अर्थ हैं

(१)—हे वही राधा नागरी, जिस

के तन की आभा पड़ने से श्यामवर्ण कृष्ण हरे रङ्ग की द्युति वाले हो जाते हैं, मेरी भवबाधा हरो।

(२)—हे वही राधा नागरी, जिस के तन की झलक (आंखों में पड़ने से श्रीकृष्ण प्रसन्नवदन हो जाते हैं), मेरी भवबाधा हरो।

(३)—हे वही राधा नागरी, जिसके तन (रूप) का ध्यान पड़ने से (भक्त के मन में आने से) काले रङ्ग वाला पदार्थ (पाप) हृतद्युति हो जाता है, मेरी भवबाधा हरो।

नेह—प्रेम रूपी तैल

पृष्ठ १४२

जनायौ—जिसने तुझे सारा जगत् जनाया ज्ञात कराया। जगन्नाथ इसका अर्थ ऐसा करते हैं "जिसके द्वारा विह्वल जगत् (तुझसे) जाना गया। जनायौ का अर्थ उत्पन्न किया भी हो सकता है।

दई—दैव

सदन तन—घर का पिण्ड

(८)—जेठ की दुपहरी देखकर छाया भी छाया के नीचे छिपना चाहती है। (वह इस समय) अतिस घन बन में बैठ रही है। अथवा घर के तन (पिण्ड) के भीतर बैठ रही है घुस रही है, अर्थात् वृक्षों के घेरे तथा घरों की भित्तियों के बाहर नहीं निकलती।

गुड़ी—पतङ्ग

पीनस—नासिका का रोग, जिससे रोगी को गन्ध का अनुभव होना रुक जाता है।

(११) मेरे हृदय की आंख उनकी आंखों के ध्यान में लगी रहती है इसलिये नींद नहीं आती।

दिया बढ़ाये—दीपक बुझाने पर

जगबाइ—जगत की हवा

पृष्ठ १४३

आनन ओप उजास—मुख की चमक के उजाले से

कहलाने—कायर हुए, व्याकुल हुए

दीरघदाघ—प्रचण्ड ताप वाली

अकस—बैर

(१८) मोर मुकट की चन्द्रिकाओं से कृष्ण ऐसे विराजमान हैं, मानो महादेव जी अक्स किये हुए (जो है सो अर्थात् कामदेव अपने) मस्तक पर सौ चन्द्रमाओं से (शोभित है)।

श्याम रङ्ग—काला रङ्ग, कृष्ण का रङ्ग, परमात्मभक्ति

ताते—तप्त, रोषान्वित

मो रस—मेरे प्रेमानन्द

रसु—स्वाद

खिन खिन—क्षण क्षण में

खीर—क्षीर, दूध

सवादिलु—स्वाद

(२१) तेरे रोषान्वित वचन मेरे प्रेमानन्द के स्वाद को नष्ट नहीं कर सकते। प्रत्युत (मेरा वह प्रेमानन्द तेरे गरम वचनों से तप्त होकर) प्रतिक्षण औटे हुए दूध की भांति अधिक स्वादिष्ट होता है।

(२३) लोभरूपी चश्मा आंखों पर दिये रहने के कारण लघु प्राणी भी बड़ा जान पड़ता है।

सांवल गात—श्यामल शरीर, कृष्ण

लालच भरे चपल—सौन्दर्यावलोकन की लालसा से पूर्ण होने के कारण चपल।

पृष्ठ १४४

जोइ—देख

(२५) हे मन! मोहिनी मूर्ति वाले श्याम की (यह) अद्भुत गति (रीति) देख। (यद्यपि) यह बसते (तो) चित्त के भीतर हैं तथापि प्रतिबिम्बित जगत् में होते हैं। (अपना) रूप जगत् के सब पदार्थों में दिखलाते हैं, अर्थात् श्याम सुन्दर के हृदय में बसने से

सर्व जगत् तन्मय दिखाई देने लगता है।

निरधार—निर्धारण, निश्चय, निश्चित रूप से

रूपु—सौन्दर्य तत्त्व

(२७) मैंने तो निश्चय रूप से यह समझ लिया है कि भासमान जगत् कांच की न्याँई विनाशी है। द्वैत जगत् में अद्वैतरूप सौन्दर्य तत्त्व प्रतिफलित है।

कहि आवत-हेत—यह वाक्य इस हेतु कहने में आता है अर्थात् यह बात इस लिये कही जाती है कि...

पृष्ठ १४५

मोरचा—ज़ंग, मैल

अर्क—आका, सूर्य

उदोतु—उदिति, उदय, प्रकाश

दु:खदंद—दु:ख द्वन्द्व, दो दु:खों का उत्कर्ष, दो की मार।

(३८) मन के मन्दिर में तब तक राम किस मार्ग से आवें जब तक निपट विकट (अत्यन्त दृढ) जड़े हुए कपट रूपी किवाड़ न खुल जाय।

(३९) देखने में सुकुमार शरीर को छूते हुए उसे मन में शंका रहती है कि यह मेरे भार को शायद ही सह सके।

भजन—जपना, भागना

(४२) मालारूपी पतवार को पकड़ कर, हरिनाम को नाव बना कर संसार सागर को पार कर।

रजराजस—क्रोधरूपी धूलि

(४४) जिस से पलमात्र लगते ही (फिर) दृग पलक से पल भर भी नहीं लगते (छूते)

तौ रसरांच्यौ—तेरे सुख के स्वाद से रचा हुआ अर्थात् परचा हुआ

कूर—क्रूर, निर्दय

साथ—सार्थ, समूह

(४६) अपने चित्त में वही कीजिये (दया कीजिये) जिस से पतितों के समूह तरते रहे हैं

(५२) जिस प्रेमरूपी समुद्र में पर्वत से भी उन्नत रसिक जनों के सहस्रों मन डूब गये वही प्रेमसागर नरपशुओं की दृष्टि में खाई के समान है।

करौट—करवट

मोषु—मोच

पृष्ठ १४७

(६०) कहेति—कहेअति=कहे हैं अति सच्चे वचन।

(६१) नए=नत, विनीत

आंटे परि=अवसर मिलने पर

(६२) बाउ=वापी, बावड़ी

(६४) भले ही संसार मेरी निन्दा किया करे मैं कुटिलता न तजूँगा। हे दीनदयाल! यदि मैंने अपने मन को सीधा बना लिया तो तीन जगह से वक्र तुम को उस में आते हुए कष्ट होगा।

त्रिभंगी=तीन टेढ़ वाला, त्रिवलित सत, रज, तम की तीन बलि।

सरल—(१) सीधा, (२) स्वच्छ

लाल=सुन्दर, सत, रज और तम के भेद में अद्वैत चिति सुन्दर प्रतीत होती है।

(६५) इस दोहे में बिहारी निर्गुणोपासना का समर्थन करता है। वह कहता है कि सगुणोपासना में तो प्रभु के गुणों का पार नहीं मिलता। भक्त गुणों के चक्कर में पड़ गुणी को भूल सा जाता है। किन्तु निर्गुणोपासना के द्वारा चिदानन्द अन्त:करण में भासित हो जाते हैं, क्योंकि वह भूपाल सर्वव्यापी हैं। इसी तत्त्व को कवि बड़ी चातुरी से, चिति की उपमा गुड्डी से देकर व्यक्त करता है।

गुण गान के समय भगवान् भक्त की ओर पीठ कर दुरा जाते हैं। किन्तु निर्गुणोपासना में, सर्वव्यापी होने के कारण, वे निकट ही, अर्थात् मन के भीतर प्रकट

हो जाते हैं । जिस प्रकार पतङ्ग का उड़ाने वाला ज्यों ज्यों उसकी डोरी को ढीला करता जाता है त्यों त्यों पतङ्ग उस से दूर होती जाती है। किन्तु जब वह डोरी को खींच लेता है तब पतङ्ग उसके हाथ में आ पड़ती है।

पृष्ठ १४८

(६७) जिस मुकुट को सिर पर धारण कर राजा राव लोग संसार में आदर प्राप्त करते हैं यदि उस मुकुट को कोई व्यक्ति अपने पैर में पहरे तो वह अपनी मूर्खता प्रकट करता है।

(६६) छायाग्राहिनी=पर छांई को देख पकड़ने वाली मछली

(७५) बकारी=टेढी लकीर जो किसी अंक को रुपया सूचित करने के लिये उसकी दाहिनी ओर खींच दी जाती है।

दामु—एक पैसे का पच्चीसवां भाग

पृष्ठ १४६

पोतु—आदत

सकातु—शंकित होता है

मयंकु—चन्द्रमा

(८१) ऐंठ कर आसमान ही से क्यों न लग जांय, ओछे आदमी बड़े नहीं बन सकते।

गैन— गगन

तरेरे—ऐंठ कर

(८३) नायिका की दृष्टि सारी भीड़ में से होती हुई घूम फिर कर नायक की ओर जाती है और सब की आंखें बचा कर उसकी आंख से मिल कर लौट जाती है।

पुहुमि—भूमि

पृष्ठ १५०

चोल—मञ्जीठ

भूषण

वीररस के प्रख्यात कवि भूषण चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। इनका जन्मकाल संवत् १६७० है। चित्रकूट के सोलंकी राजा ने इन्हें 'कवि भूषण' की उपाधि दी थी। इसका वास्तविक नाम निश्चित नहीं। ये अनेक राजाओं के यहां रहे। अन्त में इन्हें छत्रपति महाराज शिवा जी की शरण मिली। पन्ना के महाराज छत्रसाल के यहां भी इनका आदर था। इनकी मृत्यु संवत् १७७२ में मानी जाती है।

इनके ग्रन्थों में 'शिवराजभूषण' 'शिवाबावनी' और 'छत्रसाल-दसक' ये तीन प्राप्य हैं। इनके अतिरिक्त तीन ग्रन्थ और कहे जाते हैं—'भूषण उल्लास' 'दूषण उल्लास' और 'भूषण हजारा'।

इनकी कृति में वीररस का प्रवाह है और ओजस्विता का स्पन्दन। रीति काल के अन्य कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के सम्मुख शृङ्गार का वर्णन कर उनकी भोगलिप्सा को उद्दीप्त किया। भूषण ने अपने आश्रयदाताओं की वीरता को उकसा उनकी जातीयता, देशाभिमान, तथा धार्मिकता को प्रबुद्ध किया। शिवाजी और छत्रसाल ने अपनी सुनहरी कृतियों से हिन्दू जनता के हृदय में घर कर लिया था। उन कृतियों का ओजस्वि वर्णन करने वाली कविता का हार्दिक स्वागत होना स्वाभाविक था।

रीतिमार्गी होने के कारण भूषण ने अपना प्रधान ग्रन्थ 'शिवराज भूषण' अलंकार के ग्रन्थ के रूप में बनाया। किन्तु रीति-ग्रन्थ की दृष्टि से और अलंकार निरूपण के विचार से यह उत्तम

कोटि का ग्रन्थ नहीं कहा जा सकता। लक्षणों की भाषा अस्पष्ट है, और कई स्थानों पर उदाहरण भी ठीक नहीं बैठते।

भाषा ओजस्विनी होने पर भी अव्यवस्थित है। व्याकरण का उल्लंघन सामान्य बात है और वाक्य रचना भी असंगत है। शब्दों के रूप तोड़े मरोड़े गये हैं और कहीं कहीं बिलकुल गढ़न्त के शब्द रख दिये हैं।

पृष्ठ १५१

नाग—सांप, हाथी

पुरहूत—इन्द्र

पृष्ठ १५२

देवल—मंदिर

वृन्द

ये मेढता (जोधपुर) के रहने वाले थे और कृष्णगढ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। संवत् १७६१ में ये कृष्णगढ नरेश के साथ औरङ्गजेब की फौज में ढाके तक गए थे। इनकी 'वृन्दसतसई' (सं० १७६१) जिस में नीति के सात सौ दोहे हैं बहुत प्रसिद्ध है।

पृष्ठ १५५

सलभ—कीट

पृष्ठ १५७

भेव-भेद

पृष्ठ १५८

सर सी—तीर सी

अयान—अज्ञान

उधरे—उद्धृत हुए, स्वर्ग को गए

पृष्ठ १५९

भटा—बैंगन

बैन—वाणी

पृष्ठ १६०

करी—हाथी, बनाई हुई

पृष्ठ १६१

कर—हाथ

उनयौ—उन्नत, आया हुआ

पृष्ठ १६२

स्रौन—श्रवण, कान

बिहान—भोर, प्रात:

सतरात—क्रुद्ध होता है

गारत—मेटना

गुन—रस्सी, बत्ती

पृष्ठ १६३

नाहर—सिंह

तनत्रान—कवच

पनहीं—उपानह, जूता

अवसान—भीर, मुसीबत में

अपरापत—अज्ञात, विधि

पृष्ठ १६४

अम्बर डम्बर—आकाश की लालिमा आदि

रस—प्रेम

पैस—प्रवेश्य, घुसा कर

भुँसि—भुँकत्रा कर

पृष्ठ १६५

थाप—निश्चित करना

रसनिधि

इनका नाम पृथ्वीसिंह था और ये दतिया के जमींदार थे। ये १७१७ तक विद्यमान थे। बिहारी के अनुकरण पर इन्होंने रतनहजारा रचा था जो साहित्य की दृष्टि से रुचिर है। ये शृङ्गार के प्रौढ कवि थे।

पृष्ठ १६८

नातर—नहीं तो

तारण-तरण—पार करने वाले

(२) वे चित्त रूपी नगर अच्छे बसे हुए हैं।

कर तार—हाथ में सूत्र

पृष्ठ १६६

आद—आदि=उपादान कारण

अनल—अग्नि

अनिल—वायु

(१२) दार्शनिकों के मत में अग्नि वायु से उत्पन्न होता है।

पृष्ठ १७१

सिहाइ—देख कर प्रसन्न होना

अनखाइ—अप्रसन्न होना

बरुनि—आंख पर के बाल

पृष्ठ १७३

झीने—पतले

हित तार—प्रेम सूत्र

तरणि—सूर्य

पृष्ठ १७४

पतङ्ग—शलभ

कसक कर—दरक कर, पीड़ित होकर

पुहुमि—भूमि

पृष्ठ १७५

उयै—उदय होने पर

मीत—सूर्य

पद्माकर भट्ट

पद्माकर तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहन लाल भट्ट था जो पूर्ण पण्डित थे और ख्यातनामा कवि थे। पद्माकर का जन्म सं० १८१० में बांदे में हुआ। इन्होंने ८० वर्ष की आयु भोग कर अन्त में कानपुर में गंगातट पर सं० १८९० में शरीर छोड़ा।

ये कई स्थानों में रहे। सुगरा के नोने अर्जुनसिंह ने इन्हें अपना मंत्र गुरु बनाया। १८४६ में ये अनूपगिरि उपनाम हिम्मत-

बहादुर के यहां गये जो बड़े योद्धा, और पहले बांदे के नवाब के यहां थे। इन्हीं के नाम पर पद्माकर ने 'हिम्मत-बहादुर-विरदावली' नाम की वीररस की एक बहुत ही फड़कती हुई पुस्तक लिखी। जयपुर के महाराजा जगतसिंह की स्तुति में इन्होंने 'जगद्विनोद' बनाया।

स्निग्ध तथा मधुर पदावलियों द्वारा व्यापक प्रेममूर्ति के घड़ने में, लाक्षणिक शब्दों द्वारा आत्मा की स्तिमित भावनाओं को जागृत करने में और सानुप्रास शब्दों का चमत्कृत आयोजन करने में पद्माकर रीतिमार्गी कवियों के सिर मौर हैं।

इनकी प्रमुख कृति 'जगद्विनोद' में शृङ्गारस का आसार छलकता है। मंजुल कल्पना, अव्यक्तचित्रण, तथा हावभावों की भावित भंगी में यह ग्रन्थ मतिराम के 'रसराज' के समान है। 'पद्माभरण' में अलङ्कारों का मार्मिक विवेचन है। 'प्रबोध पचासा' तथा 'गंगालहरी' में भक्तिरस का संचार है। 'रामरसायन' में राम के चरित्र का मंजुल चित्रण है।

पद्माकर भाषा के स्वारसिक प्रवाह को बनाये रखते थे। वे लाक्षणिक शब्दों द्वारा मन की गूढ भावनाओं को जगमगा देते थे। वे कारीगरी में विश्वास न कर प्रतिभा के पुजारी थे। उनकी कल्पना मंजुल थी, तीव्र थी और अनेक रूप थी। इनकी भाषा की कोमल कान्त पदावली में कहीं तो हमें सजीव, भावभरी प्रेममूर्ति के दर्शन होते हैं, कहीं भाव या रस की सरिता के दर्शन होते हैं, कहीं अनुप्रासों की मिलित झंकार सुनाई पड़ती है, कहीं दर्पोत्सिक्त

कविता कामिनी की अकड़ और ऐंठ दीख पड़ती है और कहीं प्रशान्त सरोवर के समान उस में जीवन की विश्रान्ति का आभास मिलता है।

पृष्ठ १८१

मीच–मृत्यु

दीनदयाल गिरि

गोसाईं दीनदयाल गिरि का जन्म शुक्रवार वसंत पञ्चमी संवत् १८५६ में काशी के गायघाट मुहल्ले में हुआ था। इनका परलोकवास सं० १६१५ में हुआ।

बाबा जी संस्कृत और हिन्दी दोनों के पूर्ण विद्वान् थे और अत्यन्त सहृदय और भावुक कवि थे। अन्योक्तियां इनकी अपने जैसी आप हैं। आपका भाषा पर पूर्णाधिपत्य था। इनकी सी परिष्कृत, सुव्यवस्थित और स्वच्छ भाषा बहुत थोड़े कवियों की है।

इनकी कृतियों में अन्योक्तिकल्पद्रुम, अनुरागबाग, वैराग्यदिनेश, विश्वनाथ, नवरत्न और दृष्टान्त तरंगिणी ज्ञात हैं।

आपका कोमल व्यंजक पद विन्यास पर और शब्द चमत्कार आदि के विधान पर समान अधिकार था।

पृष्ठ १८३

संदोह–गिरोह, झुण्ड

पृष्ठ १८४

सैन–चेष्टा

नीरधि—समुद्र

पृष्ठ १८५

काक तालिका न्याय—अकस्मात
किसी कार्य का हो जाना

पन्नग—सांप

विषैं—मध्य

पृष्ठ १८६

पखान—पाषाण, पाहन

पृष्ठ १८७

गहबी—ग्रहण करना

बड़वागि—समुद्र की अग्नि

पृष्ठ १८८

पछलत्त—पिछली लात

रघुराजसिंह

इनका जन्म सं० १८८० में और मृत्यु सं० १९३६ में हुई। ये रीवां के राजा थे। इन्होंने भक्ति और शृङ्गार के अनेक ग्रन्थ रचे। ये अच्छे कवि थे।

पृष्ठ १८९

मझारी—मध्य

विशिख—तीर

पृष्ठ १९०

पूरब केरि—पहले की

पृष्ठ १९१

भोगिभोग—सांप का फन

विथुरानि—फैल गये

छोनि—छिति, पृथ्वी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु का जन्म भादों सुदी ७ संवत् १९०७ को काशी के एक धनी वंश में हुआ था। इनके पिता का नाम गोपालचन्द्र था जो हिन्दी के अच्छे कवि थे।

भारतेन्दु अभी नौ वर्ष ही के थे कि इनके पिता का देहान्त हो गया और ये विपुल संपत्ति के अधिकारी बन गये। इन्होंने अपनी संपत्ति लोकसेवा और साहित्यसेवा के कार्य में व्यय की। इनका स्थापित किया हुआ स्कूल बनारस में आज भी 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल' के नाम से चल रहा है। इनके अनेक पत्र पत्रिकाओं में 'कविवचनसुधा' और 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' उल्लेख योग्य हैं।

इन्होंने छोटे बड़े कुल मिला कर १७५ ग्रन्थ लिखे, जिनमें बहुत से अनुवाद हैं। इनके नाटकों का हिन्दी साहित्य में बड़ा आदर है।

भारतेन्दु को वर्तमान हिन्दी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है। भाषा और साहित्य दोनों पर इनका स्थायी प्रभाव पड़ा। इन्होंने गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे मधुर और स्वच्छ बनाया और हिन्दी साहित्य को नवीन मार्ग पर चलाया।

नवीन शिक्षा के प्रभाव से जनता की विचार धारा बदल रही थी। उनके मन में देशहित और समाज सेवा के भाव उग रहे थे। काल की गति से उनके भाव तो आगे बढ़ गये थे किन्तु साहित्य अभी पीछे ही पड़ा था। अब भी हिन्दी में भक्ति, शृङ्गार आदि की पुराने ढङ्ग की कविताएं ही होती चली आ रही थीं। बंगाल में नये ढङ्ग के नाटकों और उपन्यासों का सूत्रपात हो चुका था, जिनमें देश और समाज की नवीन रुचि और भावना प्रतिफलित थीं। किन्तु हिन्दी साहित्य अभी पुराने राग ही आलाप रहा था।

भारतेन्दु ने उसे दूसरी ओर मोड़ कर हमारे जीवन के साथ फिर से लगा दिया।

इनके नाटकों में 'वैदिकीहिंसा' 'कर्पूर मंजरी' 'सत्य हरिश्चन्द्र' 'चन्द्रावली नाटिका' 'भारतदुर्दशा' 'अंधेर नगरी' 'नीलदेवी' इत्यादि प्रसिद्ध हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, और सामाजिक सभी प्रकार के नाटक हैं। 'काश्मीर कुसुम' 'बादशाह दर्पण' आदि लिख कर इन्होंने इतिहास को अलंकृत किया। अपने अन्तिम दिनों में वे उपन्यास लेखन में प्रवृत्त हुए थे किन्तु केवल ३५ वर्ष की आयु भोग ६ जनवरी १८८५ को संसार से चल बसे।

अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल से एक ओर तो यह पद्माकर आदि प्राचीन कवियों से टक्कर लेते थे और दूसरी ओर बंगला के ख्यातनामा कवि माइकेल और हेमचन्द्र की श्रेणी में शोभित होते थे।

एक ओर तो यह राधा और कृष्ण की भक्ति में झूमते थे, दूसरी ओर मंदिरों के अधिकारियों और टीकाधारी भक्तों के चरित्र का उपहास करते थे और स्त्रीशिक्षासमाजसुधार और देशभक्ति आदि पर व्याख्यान देते पाये जाते थे। प्राचीन और नवीन का यही सुन्दर संकलन भारतेन्दु की सब से बड़ी विशेषता है।

पृष्ठ १६५

त्रिविध भय—आध्यात्मिक, आधि भौतिक और आधि दैविक, क्लेश

हरि-रस=हरि के चरणनखरूपी जो चन्द्रकान्त मणि उससे बहने वाला अमृत रस

पृष्ठ १६६

ऐरावत–इन्द्र का हाथी
गिरि-कल=हिमालय के गले का सुन्दर हार
अङ्कम–बगलगीर होकर मिलना
जोहत–देख कर
मढी–मण्डप
नौवत–वाद्य, नगारा
सुच्छ–सुच्चे, पवित्र
करन–हाथ, अङ्ग
नवल–नवीन
दीठि–दृष्टि

पृष्ठ १६७

तरनि तनूजा–सूर्य कन्या, यमुना
किधौं–या अथवा
मुकुर–दर्पण
नैरहे–झुक रहे
सैवालन–सिवार

पृष्ठ १६८

गोभा–कली, अंकुर
बगरे–फैले हुए
राका–रात्रि
अवनी–पृथ्वी
जुड़ात–प्रसन्न होते हैं

पृष्ठ १६६

पारावत–कपोत
कारण्डव–हस विशेष
रोर–रौला, शब्द
रजतसिढ़ी–चांदी की सीढ़ी
पांवडे–पांपोश

पृष्ठ २०६

दिवस मनि–सूर्य

पृष्ठ २०७

जौ–यदि

बदरी नारायण चौधरी

आप का जन्म सं० १६१२ भाद्र कृष्णा षष्ठी को हुआ था।

आपके पिता का नाम गुरुचरण लाल था जो मिरजापुर के प्रतिष्ठित रईस थे।

आप भारतेन्दु के मित्रों में से एक थे। आपकी गद्यशैली भारतेन्दु से भिन्न थी। आप गद्यरचना को एक कला के रूप में मानते थे। आपकी भाषा अनुप्रासमयी और चुहचुहाती होती थी। आपके लेख अर्थगर्भित और विचारपूर्ण होते थे।

आपने 'आनन्दकादम्बिनी' नामक पत्रिका निकाली थी। पीछे से आप ने 'नागरी नीरद' नाम का साप्ताहिक पत्र निकाला।

आपने हिन्दी में समालोचना का सूत्रपात किया था।

संवत् १६८० में आप स्वर्ग सिधारे।

प्रताप नारायण मिश्र

पण्डित प्रताप नारायण मिश्र का जन्म आश्विन कृष्ण नवमी सं० १६१३ (जि० उन्नाव) में हुआ था। आपके पिता पं० संकटा प्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। प्रतापनारायण उर्दू, फारसी, संस्कृत और हिंदी के ज्ञाता थे। इन्होंने 'ब्राह्मण' नाम का मासिक पत्र निकाला था। १८८६ में आपने कालाकांकर से निकलने वाले 'हिन्दोस्थान' पत्र का संपादन किया।

पण्डित जी हिन्दी और हिन्दुस्तान के परम भक्त, सुकवि और लेखक थे। आपने १२ पुस्तकों का अनुवाद किया था और २० पुस्तकें लिखी थीं।

आषाढ़ शुक्ला चतुर्थी संवत् १६५१ में आपने स्वर्गारोहण किया।

पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा

शंकर जी का जन्म सं० १६१६ की चैत्र शुक्ला पंचमी को हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ। आपके पिता पं० रूपराम जी शर्मा गौड़ ब्राह्मण थे।

शङ्कर जी पीयूषपाणि वैद्य थे और वैद्यक ही उनकी वृत्ति थी। आप को कविता करने का बचपन ही से शौक था। आपकी गिनती हिन्दी के पुराने कवियों में है। पहले आप ब्रजभाषा में बड़ी सुन्दर और गठी हुई कविता करते थे। पीछे खड़ी बोली का प्रचार होने पर आप उसमें भी श्रेष्ठ कविता करने लगे। आपकी पदावली में परुषता टपकती है।

आपकी कृतियों में 'शङ्कर सरोज' 'अनुराग रत्न' 'गर्भरण्डा रहस्य' और 'वायसविजय' मुख्य हैं। इन पुस्तकों की काव्य मर्मज्ञों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

आप उर्दू में भी अच्छी कविता करते थे। संस्कृत और फारसी के भी आप पण्डित थे। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल तथा सादा था।

आपकी आर्यसमाज में बड़ी प्रतिष्ठा थी। आपके सुपुत्र पण्डित हरिशंकर शर्मा 'आर्यमित्र' के संपादक हैं।

लगभग डेढ़ वर्ष हुआ आप संग्रहणी का कष्ट भोग स्वर्ग सिधार गये।

पृष्ठ २२३

छिकें—छेक दिये जांय, जाति से पृथक् कर दिये जांय

खर्व—हेच

सङ्गर—संग्राम

सुरभि—गौ

पृष्ठ २२६

शम्बुक—सीप

छिगुनी—छोटी अंगुली

पृष्ठ २२७

खर—गधे

पृष्ठ २·६

पाग—पगड़ी

होड़—स्पर्धा

पं० श्रीधर पाठक

पाठक जी का जन्म माघ कृष्णा चतुर्दशी सं० १६१६ जोन्धरी गांव (आगरा) में हुआ। आप संस्कृत तथा अंग्रेजी के पण्डित थे। आपने भारत सरकार के दफ्तर में सालों सुपरिण्टेण्डेण्ट का काम योग्यता के साथ किया था।

पाठक जी खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों में कविता करते थे। आपने गोल्डस्मिथ के तीन ग्रन्थों का हिन्दी अनुवाद किया। इनके नाम हैं 'एकान्तवासी योगी' 'ऊजड़ ग्राम' और 'श्रान्त पथिक'। आप लखनऊ में होने वाले पञ्चम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति बने थे।

पृष्ठ २४३

जगजीय जुड़ावनहार—संसार के मन को प्रसन्न करने वाले

रवि कर प्रखर प्रहार—सूर्य किरणों का प्रचण्ड प्रताप

पृष्ठ २४४

निहिचल—निश्चल

बालमुकुन्द गुप्त

गुप्त जी रोहतक जिले के गुरियानी ग्राम के निवासी थे। आप का जन्म कार्तिक शुक्ला चतुर्दशी सं० १६२२ को हुआ था।

सन् १८८७ में आप मिरजापुर जिले के चुनार से प्रकाशित होने वाले 'अखबारे चुनार' के सम्पादक बने। उसके बाद कुछ दिन आपने लाहौर से निकलने वाले 'कोहेनूर' का सम्पादन किया। १८८६ में आपका कालाकांकर के दैदिन हिन्दी पत्र 'हिन्दोस्थान' के साथ संबन्ध हुआ। १८६८ में आपने कलकत्ते के प्रसिद्ध हिन्दी दैनिक 'भारत मित्र' का सम्पादन आरंभ किया और उसकी बहुत कुछ उन्नति की। आपने 'मडेल भगिनी' 'हरिदास' 'रत्नावली नाटिका' 'शिवशम्भु का चिट्ठा' 'स्फुट कविता' 'खिलौना' 'खेल-तमाशा' 'सर्पाघात चिकित्सा' आदि अनेक पुस्तिकाएं लिखी हैं।

आप हिन्दी के विज्ञ लेखक और प्रवीण समालोचक थे। आप की कविता सुन्दर तथा मार्मिक होती थी।

पृष्ठ २४६

सेल—भाला

अयोध्यासिंह उपाध्याय

उपाध्याय जी का जन्म आजमगढ़ के निकट कसबा निजामाबाद में वि० सं० १६२२ में हुआ। आप कई वर्ष तक आजमगढ़

के सदर कानून गो रहे। आजकल काशी विश्व-विद्यालय में अध्यापक हैं।

हिन्दी के कवियों में आपका स्थान ऊंचा है। आपका लिखा हुआ 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य (१६७१) में खड़ी बोली का सब से बड़ा काव्य है। इसमें श्रीकृष्ण व्रज के रक्षक-नेता के रूप में अङ्कित किये गये हैं। यह काव्य संस्कृत के वर्ण वृत्तों में है। आपका संस्कृत पद विन्यास बहुत ही चुना हुआ और काव्योपयुक्त होता है। प्रियप्रवास का वर्णन कहीं कहीं पर मार्मिक है। कृष्ण के चले जाने पर व्रज की दशा के वर्णन को पढ़ कर पाठक तन्मय हो जाता है।

इस काव्य के पश्चात् उपाध्याय जी का ध्यान बोलचाल की भाषा पर गया। इसमें अनेक फुटकर विषयों पर आपने कविता रचीं। ऐसी कविताओं का संग्रह 'चौखे चौपदे' (१६८१) में निकला। पद्यप्रसून (१६८२) में दोनों प्रकार की भाषा है। बोलचाल की भी और साहित्यिक भी। आपकी इन कृतियों में मुहाविरों की भरमार है। आपने ठेठ हिन्दी में 'देवबाला' और 'अधखिला फूल' नाम के दो उपन्यास भी लिखे हैं।

पृष्ठ २४६

करवाल—तलवार

पृष्ठ २५०

गयन्द—हाथी

व्याल—सर्प

सुअन—सुत

कलित—रम्य

सुर उर ग्राही—देवों के हृदय को

लुभाने वाला

पृष्ठ २५१

भायपरङ्ग—भ्रातृ प्रेम

उटज—पर्णशाला

किसलय—पत्ते

नखतावलि—तारे

पृष्ठ २५२

दुरारोह—दुर्गम

छिनगाते—छीदे करते हुए

सरसि—विशाल सर

रयन—रात्रि

यामिनी—रात्रि

कुवलयकर—कमल के समान कोमल हाथ

पृष्ठ २५३

दिग्दन्ती—दिशाओं के हाथी

शोणित—रुधिर

त्रिपुरान्तक—तीन पुरों को भस्म करने वाले महादेव

पूषण—सूर्य

मोहिनी—मन्त्र, जादू

लाला भगवानदीन

आपका जन्म जिला फतहपुर के बखर गांव में श्रावण शुक्ला षष्ठी सं० १९२३ में हुआ। आपने नागरी प्रचारणी सभा के हिन्दी शब्द सागर में सहकारी सम्पादक का काम करके हिन्दी पर भारी उपकार किया है। कोष समाप्ति के पश्चात् आप काशी विश्वविद्यालय में अध्यापन का काम करते थे।

आपने युवावस्था में पुराने ढङ्ग की कविता का जौहर दिखाया था। लक्ष्मी का सम्पादन करते हुए आपने खड़ी बोली को अपनाया और उसमें फड़कती हुई कवितोएँ कीं। आपकी कविताएँ प्रायः वीर रस की हैं। आपके रचे 'वीर क्षत्राणी' 'वीर बालक' और

'वीर पञ्चरत्न' नामक काव्यों में पौराणिक और ऐतिहासिक वीर व्यक्तियों की वीरता के चरित्र फड़कती भाषा में गाये गये हैं। आपने बहुत से प्राचीन हिन्दी काव्यों की टीकाएँ भी की हैं। आपकी भक्ति और शृङ्गार विषयक कविताओं में उक्ति चमत्कार पाया जाता है।

इनकी फुटकल कविताओं का संग्रह 'नदीमे दीन' में निकला है।

पृष्ठ २५७

आदिकवि—वाल्मीकि

पृष्ठ २५६

मानिषादादि—मानिषाद प्रतिष्ठां, त्वमगमः शाश्वतीः समाः। यत् क्रौञ्चमिथुनादेक-मवधीः काममोहितम्॥

जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०

आपका जन्म भाद्र सुदी पञ्चमी सम्वत् १६२३ को काशी में हुआ। सन् १६०२ में आप अयोध्या नरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी बने।

ब्रजभाषा की पुरानी परिपाटी के कवियों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। भारतेन्दु के पीछे सं. १६४६ से ही आप ब्रजभाषा में कविता करने लगे थे। आपकी कविता पुराने कविओं से टक्कर लेती है। आपकी सूझ, उक्ति वैचित्र्य तथा रचना चातुरी ध्यान देने योग्य हैं। आपकी भाषा चुस्त और गँठी हुई है। रोला छन्द में आपने 'हरिश्चन्द्र' और 'गङ्गावतरण' ये दो काव्य लिखे हैं और

बिहारी का भी बहुत प्रामाणिक संस्करण निकाला है।

पृष्ठ २६१	पृष्ठ २६४
पौरिया—दरवान	तरनि—सूर्य
परसि—छूकर	आयुस—आज्ञा
सहज—स्वाभाविक	

देवी प्रसाद पूर्ण

आप कानपुर के निवासी थे और वहां के चुने हुए वकीलों मे गिने जाते थे। आप देश भक्त, उत्तम वक्ता, उत्कृष्ट कवि और हार्दिक हिन्दी प्रेमी थे।

आपकी कविता ब्रजभाषा के पुराने कवियों का स्मरण दिलाने वाली होती थी। कानपुर के रसिक समाज की तो आप जान थे। आपने कुछ दिनों तक 'रसिक वाटिका' नाम की एक पत्रिका भी चलाई जिसमें समस्यापूर्तियां और पुराने ढङ्ग की कवितायें छप करती थीं। आपकी अनेक कृतियों में 'चन्द्रकला' 'भानुकुमार नाटक और 'धाराधर धावन' सुन्दर हैं।

खेद है कि आप केवल सैंतालीस वर्ष की आयु भोग कर सं० १६७७ में नश्वर संसार से चल बसे।

पृष्ठ २७१

मछन्दर—चूहा, मूँछों वाला

रामचरित उपाध्याय

आपका जन्म वि० सं० १६२६ कार्तिक कृष्णा चतुर्थी रविवार को गाजीपुर में हुआ।

आप संस्कृत के पण्डित हैं। खड़ी बोली की कविता की ओर आकृष्ट होने के उपरान्त आपने बहुत सी फुटकल सुन्दर रचनाओं के अतिरिक्त 'राम चरित चिन्तामणि' नाम का एक बड़ा प्रबंध-काव्य भी विविध छन्दों में लिखा। आपकी रचनाओं में भाषा स्वच्छ है और वाग्वैदग्ध्य झलकता है। आपकी 'सूक्तिमुक्तावली' 'देवदूत' 'राम चरित चन्द्रिका' 'देवी द्रौपदी' 'उपदेश रत्न माला' 'मेघदूत' और 'विचित्र विवाह' पठनीय हैं।

पृष्ठ २७५

नियति—भाग्य

सिकता—बालू

सरसीव-सरसीइव=सर की भांति

नवसुधा—नवीन अमृत

सैयद अमीरअलि "मीर"

मीर साहब का जन्म कार्तिक कृष्णा द्वितीया सं० १६३० में सागर में हुआ।

आप हिन्दी के अच्छे गद्य-पद्य लेखकों में से हैं। आपने स्वावलंबन, देशी रोजगार, स्वदेश प्रेम और व्यापारोन्नति पर अच्छी रचनाएं की हैं। खड़ी बोली और व्रजभाषा दोनों पर आपका समान अधिकार है। आपकी कृतियों में बूढ़े का व्याह,

बच्चे का ब्याह, नीति दर्पण की भाषा टीका, सदाचारी बालक, काव्य संग्रह, गद्य लेख माला आदि प्रसिद्ध हैं।

पृष्ठ २८०

मलिन्द—भ्रमर

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही

शुक्ल जी का जन्म श्रावण शुक्ला त्रयोदशी सं० १९४० में हुआ। उन्नाव जिले के अन्तर्गत कस्बा हड़हा आप की जन्म भूमि है।

आप हिन्दी के बड़े ही भावुक और सहृदय कवि हैं। आप पुरानी और नई दोनों चाल की कविताएं करते हैं। इसके साथ ही आप उर्दू में भी सुन्दर कविता करते हैं। आपकी प्राचीन ढङ्ग की कविताएं 'रसिक मित्र' काव्य सुधानिधि, और साहित्य-सरोवर आदि में निकलती रही हैं। पीछे से आपने खड़ी बोली को अपनाया और उसमें भी अच्छा नाम पाया।

आपका उपनाम 'त्रिशूल' भी है।

आपकी कृतियों में प्रेमपचीसी, कुसुमाञ्जलि, कृषक क्रन्दन, मानसतरङ्ग, और करुण भारती पठनीय हैं।

पृष्ठ २८०

मकरन्द—पुष्परेणु

सौरभ—सुगन्ध

मलिन्द—भौंरा

पृष्ठ २८१

सनकना–विचलित होना (इशारे से)

आग्रह–निश्चय, धारणा

पृष्ठ २८२

आई–आयु

रामचन्द्र शुक्ल

आपका जन्म आश्विन पूर्णिमा सं० १९४१ को अगोना गांव (बस्ती जिला) में हुआ। शिक्षाकाल में आप को कष्ट उठाने पड़े।

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हिन्दी कोश के आप सहायक सम्पादक थे। आपने ८–९ वर्ष तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका का सम्पादन भी किया है। आज कल आप काशी विश्व विद्यालय में अध्यापक हैं।

इनके लेखों में प्रायः इनके निज के विचार रहते हैं। इनके निबन्ध प्रायः दुरूह और जटिल होते हैं। साहित्य विषय पर 'कविता क्या है ?' 'भारतेन्दु की समीक्षा' 'उपन्यास' 'भाषा का विस्तार' आदि निबन्ध पाण्डित्यपूर्ण हैं। 'शिशार पथिक' वसंत, वसंत पथिक, भारत वसंत, दुर्गावती आदि कविताएं रुचिर भावों से ओतप्रोत हैं। मनोविकार विषयक लेख माला में स्वतंत्र, मौलिक और गूढ़ दार्शनिक भाव भरे हुए हैं। इनकी लेख शैली गंभीर, व्यवस्थित तथा अत्यन्त परिष्कृत है।

आपकी अनेक कृतियों में कल्पना का आनन्द, मेगास्थिनीज का भारतवर्षीय विवरण, राज्य प्रबन्ध शिक्षा (अनुवाद); बा०

राधा कृष्णदास का जीवन चरित, प्रवाह गामिनी माला, प्राचीन भारत का संक्षिप्त इतिहास, आदर्श जीवन, विश्वप्रपंच, शशांक (अनुवाद), और बुद्ध चरित ध्यान देने योग्य हैं। आप का बुद्ध चरित कविता तथा पाण्डित्य की दृष्टि से उच्च कोटि की कविता है।

आपने भ्रमरगीत, वीरसिंहदेव चरित, तुलसी ग्रन्थावली तथा पद्मावत का सम्पादन किया है। आपका हिन्दी साहित्य का इतिहास प्रामाणिक कृति है।

पृष्ठ २८३

निर्जला एकादशी—जेठ की शुक्ला एकादशी, जब कि व्रत किया जाता है।

पृष्ठ २८४

श्वान—कुत्ता

पृष्ठ १८५

दण्ड्य—दण्डनीय

पूत—पवित्र

अपावन—अपवित्र

पृष्ठ २८७

अप्रमेय—अज्ञेय, जो प्रमाणों से न जाना जा सके

थहाइये—थाह लीजिये, जानिये

ते—वे

प्रसंग—प्रकरण

महानिशा अखण्ड—सृष्टि के आरम्भ का अखण्ड अन्धकार

अगम्य—जो न जाना जा सके

पृष्ठ २८८

उछाह—उत्साह

भवधार—संसार धारा

उदगम—निकास

सरित—नदी

सिन्धुदिशि—समुद्र की ओर

तार लगाय—लगातार

सनातन—सदा से चली आने वाली

सत्वोन्मुख—सत् गुण की ओर ले

जाने वाली

सर्गगति—संसार की गति

घनपुञ्ज—घने बादल

कला—अंश

दुति—द्युति

नखत—नक्षत्र

दामिनि—बिजली

पृष्ठ २८६

उरोज—स्तन

छीर रसाल—मधुर दूध

ब्याल दशनन—सांप के दांत

गरल कराल—तीव्र विष

भूगर्भ—पृथ्वी का भीतरी भाग

भवभार—संसार का भार

मैथिली शरण गुप्त

गुप्त जी का जन्म सं० १६४३ में चिरगांव झांसी में हुआ। आपके पिता सेठ श्रीराम चरण जी कविता के बड़े प्रेमी थे और स्वयं भी अच्छे कवि थे। आप पांच भाई हैं। जिन में सियाराम शरण गुप्त भी प्रतिभाशाली कवि हैं।

आपकी कविता सरल तथा रम्य होती है। द्विवेदी जी के सम्पादन काल में आप बराबर सरस्वती में कविता भेजते रहे। आपके 'जयद्रथ वध' काव्य में खड़ी बोली का अच्छा सौष्ठव देखने में आया। इनकी सब से प्रसिद्ध पुस्तक भारत भारती हुई जिसे सर्व साधारण ने, विशेषतः देशभक्त युवक समाज ने बहुत पसंद किया। इसमें भारत के अतीत, वर्तमान और भविष्य का बहुत चलती और साफसुथरी भाषा में वर्णन है। इस पुस्तक में खड़ी बोली, बहुत ही व्यवस्थित, स्वच्छ, और परिष्कृत रूप में दिखाई पड़ी। इस के उपरांत गुप्त जी की कृतियों में उत्तरोत्तर

कविता परिष्कृत होती गई। 'केशों की कथा' 'स्वर्ग सहोदर' इत्यादि बहुत सी फुटकल कविताएं जो आपने लिखीं, सब की सब रुचिर भावों से ओतप्रोत हैं। अन्त में जब रवि बाबू की 'नीरव क्रांति' ने हिन्दी में पदार्पण किया तब गुप्त जी की वाणी में काव्य की मनोहर लाक्षणिकता और रुचिर मूर्तिमत्ता का भी विधान हुआ। गुप्त जी की कुछ प्रसिद्ध पुस्तकों के नाम ये हैं:—

रङ्ग में भङ्ग, किसान, विरहिणी ब्रजांगना, पत्रावली, वैतालिक चन्द्रहास, तिलोत्तमा, पलासी का युद्ध, पंचवटी, मेघनाद वध, स्वदेशी संगीत, सैरिन्ध्री, वीरांगना गुरुकुल, हिन्दू आदि आदि।

———

उत्कर्ष—श्रेष्ठता

भवभूतियों—सांसारिक लीला, विभूति

पृष्ठ २६१

भवबन्धन—सांसारिक बन्धन

होम—हवन

उद्भव—जन्म

ध्रुव—अटल

ताप—क्लेश

पृष्ठ २६२

अवहेलन—अपमान

स्वच्छन्द—स्वाधीन

ब्रह्मानन्दनद—परमात्मा की भक्ति की आनन्द रूपी नदी

मीन—मछली

मदिरा—शराब

निश्चेष्ट—कर्म हीन

पृष्ठ २६३

आमिष—मांस

श्येन—बाज

अस्थियां—हड्डियां

प्रौढ़तम—अत्यन्त उच्च

पृष्ठ २६४

धरा—पृथ्वी

विवेकिता—ज्ञान

पृष्ठ २६५

अवनी—पृथ्वी

अम्बर—आकाश

पुलक—रोमांच

निर्भीकमना—निर्भय मनवाला

धनुर्धर—धनुषधारी [देव

कुसुमायुध—पुष्परूपी शस्त्रवाला, काम-

पृष्ठ २६६

व्रती—व्रतशील

विपिन—वन

प्रहरी—चौकीदार

कुटीर—कुटिया

रत—लीन

मोदमयी—प्रसन्नता से पूर्ण

निस्तब्ध—शान्त

निरानन्द—आनन्द रहित

नियति नटी—भाग्य रूपी नटी

कार्यकलाप—काम (समूह)

वसुन्धरा—भूमि, धन की खान

पृष्ठ २६७

आर्त—विपन्न, क्लिष्ट, दुखी

व्यस्त—व्यग्र, जिसका मन बँटा हुआ हो

नरलोक—मनुष्यों का समुदाय

निर्वासित कर—निकाल कर

राजस्वमात्र—राज्याधिकारमात्र

पृष्ठ २६८

वनचारी—पशु आदि

सुमन—फूल

पृष्ठ २६९

निस्पृहता—इच्छाहीनता

कृत्रिमता—बनावट

अधिष्ठात्री—रक्षक

विकृति—विकार, परिणाम, बुराई

पृष्ठ ३००

हिमकम्पित—ठण्ड से कांपते हुए

बुभुक्षित—भूखा

पृष्ठ ३०१

गलिताङ्ग—कुष्ठी

नि:श्वास—आह

कर—हाथ

मायामद—धन की मस्ती

पृष्ठ ३०२

इन्द्रजाल—संसार रूपी गोरख धन्धा

गुँजारव—गूँज

पृष्ठ ३०३

अम्ल–खट्टा

नवदल–नये पत्ते

द्रुम–वृक्ष

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म माघ कृष्णा दशमी सं० १९४६ को काशी में हुआ।

बचपन से ही आपका झुकाव कविता की ओर था। आठ वर्ष की अवस्था से ही ये चटपटी तुकबन्दियां करने लगे थे। सब से पहले इनका 'उर्वशी' नाम का चम्पू प्रकाशित हुआ। उसके बाद 'प्रेमराज्य' छपा। उसके बाद आपकी अनेक पुस्तकें निकलीं जिन में 'काननकुसुम' 'प्रेमपथिक' 'महाराणा का महत्त्व' 'चन्द्रगुप्त मौर्य' 'छाया' 'राज्य श्री' 'करुणालय' 'कल्याणी परिणय' 'विशाख' 'झरना' और 'अजात शत्रु' आदि सुन्दर हैं।

आपकी कविता मौलिक, तथा रहस्यवाद को लिये हुए होती है। आप व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कविता करते हैं।

आपकी रचना में प्रतिवर्तन का सुसंगत तथा उचित रूप दीख पड़ता है। इसमें वेदना की विवृति मूर्तिमत्ता को प्राप्त किये दृष्टिगत होती है। आपकी हिन्दी के श्रेष्ठ कवियों में गणना होती है।

पृष्ठ ३०४

स्वर्ण सरसिज किञ्जल्क—सोने के कमल का पराग

धरा—पृथ्वी

विकल वेदना दूती—कलपाने वाली पीड़ा को बताने वाली

पृष्ठ ३०५

अरुण—लाल

सम—ठीक समय पर

कोकनद मधुधारा—लाल कमल के मिठास की धारा

तरल—चञ्चल

विरज—निष्कर्म

निःशोक—दुःख रहित

पथशून्य—बिना मार्ग का (जहां सड़क न हो)

सुमन मन्दिर—पुष्प रूपी मन्दिर

बदरीनाथ भट्ट

भट्ट जी गोकुलपुरा (आगरा) निवासी पं० रामेश्वर भट्ट के पुत्र हैं। आप लखनऊ विश्व विद्यालय में अध्यापक हैं और हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक हैं। आपकी कृतियों में 'दुर्गावती' नाटिका आदि अच्छे हैं।

पृष्ठ ३०६

अनूप—अनुपम

अन्तर्दृष्टि—ज्ञान चक्षु

पृष्ठ ३०७

सूर—सूर्य

हृदयवेणु—हृदय वीणा

पृष्ठ ३०८

ललाम—रुचिर, रमणीय

अनल—अग्नि

अनिल—वायु

भवघन—संसार का बादल

व्योम—आकाश

अक्षर—अविनाशी

पृष्ठ ३११

भवसिन्धु—संसार समुद्र

जलयान—जहाज

ठांव—स्थान

वियोगी हरि

हरि जी का जन्म छतरपुर (बुन्देलखंड) में चैत्र शुक्ला राम नवमी सं० १६५२ में हुआ था। लगभग १८ वर्ष की आयु में इन्होंने 'प्रेम शतक' 'प्रेम पथिक' 'प्रेमाञ्जलि' नामक पुस्तकें लिखीं। आपने 'साहित्य सम्मेलन पत्रिका' के सम्पादन के साथ 'तरङ्गिणी' 'शुकदेव' 'श्री छद्म बियोगिनी' 'साहित्य विहार' 'कवि-कीर्तन' 'व्रजमाधुरीसार' 'वीर हरदौल' 'मेवाड़ केसरी' 'प्रेमगजरा' 'चरखास्तोत्र' 'चरखे की गूंज' 'श्रीगुरु पुष्पाञ्जलि' आदि अनेक पुस्तिकाएं रचीं।

आप व्रजभूमि, व्रजभाषा, और व्रजपति के अनन्य उपासक हैं। ऐसे सहृदय रसिक जन इस रूखे जग में कम ही दीखते हैं। आपकी कविता को पढ़ कर हृदय श्याम रङ्ग में रङ्ग जाता है। अपनी अनन्य प्रेमधारा से ऊपर उठ आपने कभी कभी देश की दशा पर भी सूक्तियां कही हैं। हाल ही में आपने 'वीर सतसई' नाम का एक परमोत्कृष्ट काव्य दोहों में लिखा था जिसके उपलक्ष्य में हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने आपको १२००) का पुरस्कार प्रदान किया था। आपकी हिन्दी के उत्कृष्ट कवियों में गणना है।

पृष्ठ ३१२

मधुरिपु—मधुराक्षस का शत्रु
कालियमदमर्दन—कालिय की मस्ती को झाड़ने वाला
लोकोत्तर—उत्तम
उछाह—उत्साह
आन—अन्य
मञ्जु—स्निग्ध, मधुर
ओज—वीरता (वीर रस)
नैन सरोज—नयन कमल

पृष्ठ ३१३

पड—डिग
घालक—घातक
प्रकृतसूर—प्रकृत्या शूर, स्वभाव से ही वीर
बलि—बलि नामक राजा
अनूप—अनुपम
मरमी—ज्ञाता
बिगस्यौ—विकसित हुआ है
सुरभित—सुगन्धित हो रहा है

पृष्ठ ३१४

समर—भिड़ना, युद्ध
कादर—कदर्प, कायर
भभरि—भभराकर, डर कर
समर धार—युद्ध की नदी
मँझधार—मध्य धार
नाखि—लङ्घन करके, पार करके
करबाल—तलवार
कल—सुन्दर
अञ्जुरिन—अञ्जलि
शोणितु—रुधिर

पृष्ठ ३१५

कन्दुक—गेंद
ओजमद—वीरता का मद्य
जूझिबै—लड़ने
अवगाहिं—उतराना, नदी में होकर चलना
सुरसरी—देवों की नदी, गंगा
कबन्ध—धड़
अनल कुण्ड—अग्नि कुण्ड
तारण तरण—पार लगाने वाला

पृष्ठ ३१६

कुरुखेत—कुरुक्षेत्र
प्रतिरूप—प्रतिरूपक, मूर्ति
अंकोर—(गोदी में) लेना
हय—घोड़े

गय—गयन्द, हाथी
सरिस—सदृश
सिवामधु—शिवा जी के यश रूपी कमल का भौंरा
रसभूषण-भूषण—रसों में श्रेष्ठ रस की महिमा को बढ़ाने वाला
सरविद्ध—तीर से जखमी

पृष्ठ ३१७

पञ्चानन—केसरी
केहरी—केसरी, सिंह
कुम्भ—मस्तक
करीन्द्र—हस्तिराज
तनुबारिधि—शरीर रूपी समुद्र
अतनुतरङ्ग—कामदेव की लहर
तामधि—उसके मध्य
अनल बर्न—अग्नि के रङ्ग वाली
दुवनदीह दलु—शत्रुओं की दृष्टियों के समुदाय को
उमाह—उत्साह
रतिरङ्गरली—प्रेमरङ्ग रञ्जित
अवदात—सफेद

पृष्ठ ३१८

तडित—बिजली
दुरि जाय—दूर हो जाती है
सारङ्ग—शार्ङ्ग, धनुष
अङ्ग—शरीर
रसमूर—प्रेम का मूल्य
अच्छर निधि—विद्या, पुस्तकें

पृष्ठ ३१९

पयोधर—स्तन
परिच्छा—परीक्षा
धूरिधूसरित—धूल से लिपटे हुए
धरनी—धरा, पृथ्वी
जारि हौं—जलाऊँगा
क्लीब—नपुंसक
पुजहीन—पूजाहीन
छवाय—छान बँधवा कर

पृष्ठ ३२०

परखति—प्रतीक्षा करती हुई
निशिखहार—तीरों की माला
हा—मैं
प्रसून—पुष्प
प्रकृत बीरबर—स्वभाव से ही बड़ा वीर
हीय—हृदय
दुर्ग—किला, वह स्थान जिस में न

जा सकें।
अथयौ—अस्त हो गया
भावन—भव्य, सुन्दर
मांझ—मध्य
निजता—अपनापन
दई—दैव
परिधान—वस्त्र जो चारों ओर लपेटा जाय
अहै—अस्ति, है
घरीक—एक घड़ी में
छार—धूलि
भूभार—भूमि पर भारभूत

पृष्ठ ३२१

मर्म—रहस्य
मसक—मच्छर
पाट्यौ—पाटा है,
पयोधि—समुद्र
हेरति—देखती है
उतङ्ग—उत्तुङ्ग, ऊंचा
उमंगि—उत्साह में फूल कर
पतधर—प्रतिष्ठा को बचाने वाले
अकाल—तीनों कालों में विद्यमान

पृष्ठ ३२२

अहेरी—व्याध, शिकारी
तीछन—तीक्ष्ण
सुमनहार—पुष्पमाला
मानिनि-गढ़=अभिमानिनी स्त्रियों के मानरूपी किले को
पौढ़े—लेटे
पत—प्रतिष्ठा
एहैं—आयेंगे
कादर—कदर्य, कायर
काम अधीर—इच्छा से सताये गये
तियमृगईछन—स्त्री रूपी मृग की आंख
छार—धूलि
उर—छाती
घाय—घाव
नवकीन—नया-नया किया है

पृष्ठ ३२३

उसीर कुटीर—खसखस की कुटी
वृषरवि—वृषराशि का सूर्य
मनोज अधीर—काम तप्त
दाप—दर्प, अभिमान
ऐंड—ऐंठ

मेंड—मर्यादा
रसालरस—आम्ररस
घलाघली—मारकाट
हियौ—हृदय

पृष्ठ ३२४

चितेरे—चित्रकार
पोत—जहाज
अथयौ—अस्त हुआ
उनयौ—उदय हुआ
जिमि—जैसे
तिमि—तैसे

——

रामनरेश त्रिपाठी

पं० रामनरेश त्रिपाठी का नाम खड़ी बोली के कवियों में बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। उनकी कविताओं में भाषा की सफाई और भावों की मार्मिकता पूरी पूरी मिलती है। उनके "पथिक" नामक प्रबन्ध काव्य की हिन्दी जनता में बहुत दिनों तक चर्चा रही। सचमुच वह अनूठे भावों की चित्रित पिटारी है। आपकी फुटकल रचनाएं भी मार्मिक होती हैं। आप हिन्दी और उर्दू दोनों के छन्दों का बेधड़क व्यवहार करते हैं। आपने हिन्दी कविता का बड़ा ही सुन्दर तथा विस्तृत संग्रह प्रकाशित किया है।

आप प्रयाग में रहते हैं।

——

पृष्ठ ३२५

अधर—नीचे का ओंठ
लोलुप—चञ्चल
गौरवता—गुरुता
रजनी—रङ्गने वाली, रात्रि
नीरवता—मौन

पृष्ठ ३२६

समीर—चलने वाली वायु

खलियान—पैर

मर्मभेदनी—मन में चुभने वाली

सन्तत—लगातार

सदन—घर

पृष्ठ ३२८

उत्थान-में=उस समय तू पतन के रूप में भी विकास को प्राप्त कर रहा था।

परमार्थ—उत्कृष्ट ध्येय, परोपकार

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

'निराला' जी का जन्म सं० १६५५ में हुआ। आप वर्तमान रहस्यवाद स्कूल के एक प्रमुख स्तंभ माने जाते हैं। आपकी कविताओं में दार्शनिकता और आध्यात्मिकता की मात्रा विशेष रूप से सन्निविष्ट है। गूढ़ भावों को गूढ़ और सरल दोनों ही प्रकार की भाषा में चित्रित करना आपकी विशेषता है। सूफी सिद्धान्तों की छाया आपकी कविता पर पड़ी जान पड़ती है। खड़ी बोली में आपकी रहस्यवादमयी कविताओं का संग्रह 'परिमल' और 'अनामिका' नाम से प्रकाशित हुआ है। व्रजभाषा पर भी आप का अधिकार है जैसा कि आपके द्वारा अनुवादित 'गोविंददास-पदावली' के देखने से जान पड़ता है। आपकी कविता में कला का अच्छा विकास हुआ है।

पृष्ठ ३३०

नलिन नयन—कमल के समान नेत्र

शर्वरी—रात्रि

ताल तरङ्ग—उच्च लहर

वेणु-निरत=सुन्दर वीणा के बजाने में रत

पृष्ठ ३३२

अलक—घुंघराले बाल

पुलक—रोमांच

सन्तत—लगातार

द्रुतगतिमयी—तेज गति वाली

अतीत—भूत

पृष्ठ ३३५

किसलय—पत्ता

मृदुल—मृदु

पृष्ठ ३३७

सुरसरिता—गङ्गा

उच्छ्वास—भाव

कान्तकामिनी—रसिकों को लुभाने वाली

सुरापान...—मद्य पान से होने वाले घने अन्धकार (नशा)

भ्रांति—चक्कर आना

दिनकर—सूर्य

खर—कठोर

सरसिज—कमल

रागानुग—प्रेमोन्मुख

समृद्धि—सम्पत्ति

घन विटप—घने वृक्ष

वेणी—गूँथ

रेणु—धूल

शरद-हास—शरद ऋतु के चन्द्रमा की कला की हँसी

निशीथमधुरिया—रात्रि का आनन्द

पृष्ठ ३३८

गन्धकुसुम—सुगन्धित पुष्प

पराग- पुष्प धूलि

युक्त—प्रकृति में बँधे हुए

मधुमास—वसन्त

कल—सुमधुर

मदन—कामदेव

पञ्चशर हस्त—पांच तीर हाथ में लिए हुए (कामदेव)

दिग्वसना—नंगा=दिशा ही हैं कपड़े जिसके

घन पटल—बादलों की तहें

तडित्तूलिकारचना—बिजली की पेंसिल से बनी हुई चित्रकारी

ता०-नृत्य=युद्ध रूपी ताण्डव (कठोर नृत्य) का मस्त नाच

नाद—ध्वनि

इन्दु—चन्द्रमा

अरविन्द—कमल

सुमित्रानन्दन 'पन्त'

आपका जन्म सं० १९५७ में हुआ था। आप रहस्यवादी कविता-स्कूल के एक प्रमुख कवि हैं। प्रकृति सौंदर्य में सौकुमार्य का दर्शन अन्य सहगामी कवियों की अपेक्षा यह कुछ अधिक करते हैं। इनकी रचनाओं में रम्यता तथा जटिलता का मंजुल मिश्रण है। कोमलता इनकी रचना का प्रधान गुण है—इतना कि जहां अन्य कवियों में उसका अन्त होता है, वहां से इनकी कृति में उसका आरम्भ होता है। इनकी कविता पर रवीन्द्र बाबू की छाप है। और सत्य ही इन्होंने 'आह' में संगीत का गान किया है। 'पल्लव' और 'वीणा' नाम के दो संग्रह-ग्रन्थ इनकी कविताओं के प्रकाशित हो चुके हैं।

पृष्ठ ३४०

दुखविधुरा—क्लेश पीड़ित

पृष्ठ ३४१

भू—पृथ्वी

मानस पट—मन का कपड़ा

नीरव—मौन

निर्भर—विस्रब्ध, भरोसे में

दिनकर कुल—सूर्यवंश

पृष्ठ ३४२

जुड़ालें—मिल कर ठण्डे होलें

द्रुत—जल्दी

पृष्ठ ३४३

पावस—प्रावृट्, बरसात

दुराव—छिपाव

निदान—अंत में

सुभद्राकुमारी चौहान

आपका जन्म सं० १९६७ में हुआ था। वर्तमान हिन्दी कवियित्रियों में आपका विशेष स्थान है। आप राष्ट्रीय कवयित्री हैं। प्रसाद गुण और प्रांजलता इनकी रचनाओं की विशेषता है। करुण रागिनी के भीतर वीर संगीत भरने में यह विशेष पटु हैं। देश का उज्ज्वल भविष्य इनका दृष्टि-कोण है। खड़ी बोली की कविताएं ही इन्होंने लिखी हैं, जिनका संग्रह 'मुकुल' नाम से प्रकाशित हुआ है। श्री ठाकुर लक्ष्मणसिंह चौहान बी. ए., एल. एल. बी. की धर्मपत्नी हैं और जबलपुर में रहती हैं।

पृष्ठ ३४५

परिमल—सुगन्ध

पृष्ठ ३४६

प्रणय जल्पना—प्रेमालाप